* श्रीः *



(सचित्र पौराणिक उपाख्यान)

लेखक :—

पण्डित नरोत्तम व्यास ।

प्रकाशक :—

रिखबदास वाहिती,

प्रोप्राईटर :—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० वाहिती एण्ड को०,

नं० ४, धोरमगान, कलकत्ता ।

प चार | सन् १९२४ | मूल्य २।) रेशमी २॥)

प्रकाशक :—
रिखवदास बाहिती,
आर० डी० बाहिती एण्ड को०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।



मुद्रक—
रिखवदास बाहिती,
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, चोरबगान,
कलकत्ता।

समर्पण

सेवामें—

श्रीमान् पं० चन्द्रशेखरजी पाठक

महोदय!

आप साहित्य-मर्मज्ञ हैं, और सहृदय हैं। लेखकपर आपका निःसीम स्नेह है। इन सब महान् सम्बन्धोंसे यह तुच्छ कृति आपको समर्पित करता हूं। कृतिकी ओर देखकर नहीं, लेखकके समर्पण करनेके भावकी ओर देखते हुए इसे स्वीकृत कीजिये।

स्नेह-भाजन—

—नरोत्तम व्यास।

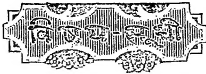
प्रेमोपहार



महिला-मणिमाला.

स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी मनोहर गल्प, सुन्दर सुन्दर पौराणिक उपाख्यान और उपदेशप्रद कथाओंको पढ़ाकर अपनी गृहलक्ष्मीको यदि सुखमयी बनाना चाहते हों, यदि अपनी कन्याओं तथा गृह-स्वामीनीको सुशिक्षिता बनाना चाहते हों तो ॥) प्रवेश फी भेजकर हमारी इस मणिमालाके ग्राहक बन जाइये, इसकी सभी पुस्तकें पौनी कीमतमें मिलेंगी।

सभी पुस्तकें अनेकानेक बहुरंगे और एकरंगे चित्रोंसे सुशोभित रहती हैं।







प्रस्तुत पुस्तकमें हमने पद्मपुराणकी एक क्षुद्र कथाकी अवतारणा की है। एक पदार्थोंका रस स्वयं चखना जुदी बात है और दूसरोंको चखाना जुदी बात है। हमने चन्द्रधर नामक काव्यमें, इस कथाकी नायिका विपुलाकी कथा पढ़कर, अन्तमें मनन करते समय, उस स्वामि-विरह-विधुरा, आश्चर्य-साधन-तत्परा, एकान्त-विपन्ना अथच निर्भीकहृदया साध्वीके कष्टोंको यादकर, बहुत देरतक आँसू बहाये हैं। महर्षि वेदव्यासरचित महाभारतकी सत्यवान्-पत्नी सावित्रीकी भाँति 'चन्द्रधर' काव्यके रचयिताने भी विपुलाका चित्र बड़ी मार्मिकताके साथ खींचा है। एवं इसीसे वह पाठकोंकी भक्तिके अर्घ्य द्वारा प्रत्येक मानसपटपर अभिषिक्त करने योग्य है। किन्तु हम भी उस चरित्रको इस आख्यानमें चित्रितकर उतनी क्षमता प्राप्त कर सके हैं, यह कहना हमारी कोरी धृष्टता है। क्योंकि हममें, प्राचीन लेखकोंकी बात तो दूर रही, आधुनिक लेखक-पुङ्गवोंकी भाँति भी करुण-रस-उद्रेक करनेकी असामान्य शक्तिका अभाव है। हमने तो उक्त पतिव्रताके पवित्र चित्रको ऐसे अङ्कित करनेकी चेष्टा की है, जिससे धर्मप्राण हिन्दुओंकी नमस्करणीया देवी विपुला उपहास्य रूपमें न दीख पड़े।

पुस्तक पढ़ जानेपर पाठकोंको ज्ञात होगा, कि आख्यानकी नायिका विपुलाका चरित्र सावित्रीके जोड़का है। जैसा साहस, जैसा बल देवी सावित्रीमें था, वैसा ही साहस, वैसा ही बल देवी विपुलामें भी था। सावित्रीने यह जानकर भी—कि जिसके साथ मैं विवाह करूँगी और जिसको मैं पतिरूपमें वरण कर रही हूं, वह अल्पायु है—सत्यवान्‌को ही अपना पति बनाया था। उसने इस सम्बन्धमें अपने आत्मीयोंके प्रतिरोधका यह कहकर खण्डन किया था, कि "हिन्दू ललनायें जीवनभरमें एक बार पतिका वरण किया करती हैं, पति बाजारमें विकनेवाला मट्टीका वर्त्तन नहीं हैं, जो टूटनेपर दूसरा खरीदा जा सके। सत्यवान् चाहे, जितने अल्पायु हों, जब मैं उन्हें अपना भावी पति बना चुकी हूं, तब यह नहीं हो सकता, कि उन्हें छोड़कर किसी दूसरे वरको चुनूँ। यदि मैं सच्ची पतिव्रता बनूँगी, तो मैं इसका भी प्रयत्न करूँगी, कि जिससे उनकी अकाल मृत्युका दोष दूरकर उन्हें सहस्रायु कर सकूँ।" सावित्रीकी इस बातको यद्यपि कितने ही लोगोंने उस समय बालसुलभ प्रगल्भता समझी थी, किन्तु उसने जो कुछ कहा, उसे अपने आगामी जीवनमें प्रत्यक्ष करके दिखा दिया। उसने यमराजके हाथमें गये हुए पतिके पञ्च-प्राणोंको अपने अपूर्व पातिव्रतके प्रभावसे लौटा लिया, और यही नहीं, उसे सहस्रायु बनानेके साथ, अपने अन्धे-सास-ससुरोंको भी नेत्रदान करा दिये। ठीक ऐसा ही स्वर्गीय दृश्य हम विपुलाके चरित्रमें भी देखते हैं।

चन्द्रधर सौदागर पद्मा-देवीसे शत्रुता करके अपने धन-जन

और वैभव, सबसे शून्य हो बैठता है, पथका भिखारी होकर दर-दर मारा मारा फिरता है। कुछ दिनों बाद शिवके प्रसादसे उसे फिर पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होती है, किन्तु उसकी रानी अलका अपने मृत पञ्च-पुत्रोंकी दशाका खयालकर उस पुत्रको भी खो देनेका स्वप्न देखती है। जिस समय पुत्र हुआ, उस समय चन्द्रधरने ज्योतिषियोंसे पूछा—"इस बालककी कितनी आयु है?" ज्योतिषियोंने जवाब दिया—"केवल विवाह होनेतक, विवाहकी रातको ही सर्पाघातसे इसकी मृत्यु हो जायेगी।" चन्द्रधर इतना सुनते ही मनमें अत्यन्त खिन्न हुआ और उसने पुत्रको जीवनभर अविवाहित रखनेका संकल्प कर लिया, किन्तु अलकाने वयःप्राप्त होनेपर पुत्रके विवाहके लिये चन्द्रधरसे सैकड़ों अनुरोध किये और चन्द्रधर पत्नीके अनुरोध तथा विधिके विधानके आगे परास्त हो गया।

अब पुत्रके लिये पात्रीका अनुसन्धान होने लगा। चन्द्रधर स्वयं कन्याकी खोज करने निकला। जाते जाते एक नगरकी समीपवर्त्तिनी नदीके तटपर उसने एक असामान्य रूप-लावण्यवती, दिव्य तेजोमयी बालिकाको सखियोंके साथ स्नान करते देखा। कन्या उसके मनको भा गयी, उसके मनमें आया कि चिरञ्जीव लक्ष्मीन्द्रका विवाह इसीके साथ कर दूँ, किन्तु ज्योतिषियोंकी भविष्यद्वाणीको यादकर फिर विवाहके विचारसे निराश हो गया।

इसी समय कन्या नदी-स्नानकर तटपर आयी। तटके एक ओर एक ब्राह्मणी स्नानान्तमें नेत्र मूँदे, एक मनसे भगवान्का

भजन कर रही थी। कन्याने दूरसे ही ब्राह्मणीको पुकारकर कहा—"देवी! जरा रास्ता छोड़कर बैठो, मैं वस्त्र बदलने जाती हूँ। सम्भव है, स्नानके वस्त्रोंके छींटे आपपर आ पड़ें।" पर ब्राह्मणी भगवान्के ध्यानमें इतनी मग्न थी, कि उसने कन्याकी बातको नहीं सुना। आखिर कन्या वस्त्र बदलने चली और चलते समय भींगे वस्त्रके दो छींटे उस ब्राह्मणीपर जा पड़े। ब्राह्मणीका ध्यान टूट गया। वह क्रोध-कम्पित-कण्ठसे बोली—"बनियेकी लड़कीकी इतनी स्पर्द्धा! देवता और ब्राह्मणका तनिक भी मान नहीं। अच्छा ठहर, मैं तुझे अभी इस पापका दण्ड देती हूँ। जा ब्याहकी रातको तेरा पति सर्पाघातसे मरेगा।"

बिना दोष शापकी भागिनी बनकर कन्याने पीछे फिरकर ब्राह्मणीकी ओर देखा। सतीत्वके तेजसे कन्याका मुख देवबालाके मुखकी भाँति कान्ति विकीर्ण करने लगा। कन्याने ओज भरे शब्दोंमें कहा—"देवि! जिस प्रकार बिना अपराध तुमने मुझे शाप दिया है, उसी प्रकार तुम्हें ही मेरे स्वामीको जीवित करना पड़ेगा। अन्यथा तुम्हारे अबतकके सारे पुण्य नष्ट हो जायँगे।"

चन्द्रधर पासमें खड़ा-खड़ा सारे काण्ड देख रहा था। वह कन्याके मुखसे उक्त बात सुन और उसके सतीत्व तथा दृढ़ता-को देखकर उसपर मुग्ध हो गया एवं उसीके साथ लक्ष्मीन्द्रका विवाह करना स्थिर कर लिया।

यथासमय विपुलाका विवाह लक्ष्मीन्द्रके साथ हो गया। जिस समय विवाह हो रहा था, उस समय किसी तरह कन्याके पिताने यह बात जान ली, कि विपुलाका पति तो केवल आजभरका

मेहमान है, रात होते ही वह सर्पाघातसे मर जायेगा। असल तत्त्व मालूम होते ही, उसने विवाहके सारे कार्य्य अधूरे ही छोड़ दिये और चन्द्रधरसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया—"मैं आपके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह न करूँगा। आपका पुत्र आसन्न-मृत्यु है। मैं जान-बूझकर अपनी एकमात्र पुत्रीका जीवन नष्ट न करूँगा।" चन्द्रधर इस समय बड़े असमञ्जसमें पड़ गया, एवं सम्बन्धीके इच्छानुसार घर लौटनेके लिये लाचार हुआ। किन्तु इसी समय पतिव्रता विपुला माता-पिता और सम्बन्धी-श्वसुरकी लाज भूलकर तेज-भरे स्वरसे बोली—"पिताजी! आप जो कह रहे हैं, वह अब न हो सकेगा। हिन्दू-ललनाकी जिस पतिके साथ अग्नि-देवकी सात परिक्रमा हो चुकी है, पाणि-ग्रहण हो चुका है, वह अब दूसरेकी पत्नी नहीं हो सकती। मेरा विवाह आर्य्य लक्ष्मीन्द्रके साथ हो चुका है, वे इसी समय शरीर क्यों न छोड़ दें, पर मैं अब उनका वामाङ्ग छोड़कर दूसरे वामाङ्गमें नहीं जा सकती। भले ही अभी वैवाहिक क्रियाओंकी परिसमाप्ति नहीं हुई है, पर मैं तो इनकी हो चुकी हूं। अब और किसीकी स्त्री कहलाकर कलङ्ककी भागिनी न होऊँगी। फिर आप सोच किस बातका करते हैं? भला तैंतीस कोटि देवताओंमें किसको ऐसी क्षमता प्राप्त है, जो एक सच्ची सतीके सतीत्व और पतिव्रताके सच्चे पातिव्रतको खण्डन कर सके? आप निश्चिन्त रहिए। किसी प्रकारकी भय-भावना न कीजिए। यदि परमात्मा चाहेगा, तो आप शीघ्र ही सुनेंगे, कि विपुलाने अपने मृत पतिको जिला लिया है।"

जब कन्या ही लक्ष्मीन्द्रसे अपना विवाह करनेको राजी थी, तब और किसकी आपत्ति हो सकती थी? अतः चन्द्रधर पुत्रका विवाहकर सानन्द घर लौट गये। किन्तु विधिका विधान और तपस्विनीका शाप न टल सका और रातको लक्ष्मीन्द्र सर्पाघातसे मर गये। पतिके मर जानेपर विपुला दुःखित तो बड़ी हुई पर उसके जीवनसे निराश न हुई। उसने प्रतिज्ञा की, कि जिस तरह होगा, मैं पतिको जीवित करूँगी।

सतीके अध्यवसायसे प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी और जो मारनेवाला है, उसी विभुने पातिव्रतकी महिमाको बढ़ानेके लिये लक्ष्मीन्द्रको जिला दिया। पतिव्रताके प्रसादसे पति ही जीवित नहीं हुआ, वरन् उसके पूर्वमें मरे छहों ज्येष्ठ भी जीवित हो उठे। चन्द्रधरका श्मशान हुआ परिवार केवल एक पतिव्रताके तेजसे फिर भर गया और तबसे उस सतीका माहात्म्य सावित्री-माहात्म्यकी भाँति ही महिमामय हो उठा। अस्तु,

ऊपर पुस्तकगत कथाका सारांश दे दिया गया है, सावित्रीके चरित्रसे विपुलाके चरित्रकी चन्द शब्दोंमें तुलना कर दी गयी है। पाठक उसे पढ़कर जान लें कि, सावित्री और विपुलामें कितना विलक्षण सामञ्जस्य है। मानों महाभारतकी सावित्रीने ही पद्मपुराणकी विपुलाका अवतार धारण किया था। अतएव उपाख्यान हिन्दी-पठित महिलाओंके लिये आदरणीय है।

विपुलाकी कथा भारतके पूर्वाञ्चलमें ही विशेष प्रचलित है। अन्य प्रान्तोंके लोगोंने सम्भवतः विपुलाका नाम भी न सुना होगा। इसका वास्तविक कारण क्या है, बहुत कुछ

विचार करनेपर भी हम स्थिर न कर सके। इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि यह कथा सावित्री-कथासे कम उपदेशप्रद नहीं है। इसीसे हमारा यह प्रयास है। आशा है, गुणग्राही पाठक-पाठिका-गण विपुलाकी कथाको प्रसन्नतापूर्वक पढ़कर हमारे परिश्रमको सार्थक करेंगे।

अन्तमें हम इस पुस्तकके प्रकाशक, मारवाड़ी जातिके रत्न-स्वरूप श्रीयुक्त रिखवदासजी वाहितीको अनेक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने पुस्तकके वहिरङ्गको सजाने और मनोहर बनानेके लिये विपुल व्यय किया है।

कलकत्ता-प्रवास—
१५-१२-२१

नरोत्तम व्यास।



१०

नाट्य-ग्रन्थमाला

सुन्दर, सचित्र, उपदेशप्रद
सरस, सरल अलंकार भरी
कविता और भाव भरी भाषासे पूर्ण
पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक
❀ सचित्र नाटक ❀
पढ़कर, काव्य-वाटिकाका आनन्द
लेना हो, तो
॥) प्रवेश फ़ी भेजकर
'नाट्य-ग्रन्थमाला'
—के—
ग्राहक बन जाइये.
प्रत्येक पुस्तक पौनी कीमतमें मिलेगी।

आर० डी० बाहिती एण्ड कं०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।



विपुलाका प्रत्यागमन ।

सती विपुला



भक्त-माहात्म्य



भारतके पूर्वांञ्चलमें, किसी समय 'चम्पक' नगर नामका एक अति रमणीय नगर था। आजकल उसका अस्तित्व किस नामसे है; इसकी बहुत कुछ खोज करके भी देशके पुरातत्व-वेत्ता लोग अभीतक सफल-मनोरथ नहीं हो सके हैं। चम्पक नगर किसी क्षत्रिय राजाका राज्य नहीं था। वहाँ एक वैश्यकी जमींदारी थी। उस वैश्यका नाम चन्द्रधर था। चन्द्रधर अपने जमानेमें संसार-प्रसिद्ध सौदागर था। सौदागरीके व्यवसायके द्वारा उसके पूर्वपुरुषोंने तो लक्ष्मीकी विशेष कृपा प्राप्त की ही थी, किन्तु चन्द्रधरने इस व्यवसायसे अतुल वैभव, असीम मान और कुवेरकी भाँति धन एकत्रित किया था।

चन्द्रधर बचपनसे ही व्यवसाय-वाणिज्यका बड़ा शौकीन था। जिस दश वर्षकी अवस्थामें संसारके सारे लड़के आठोंपहर खेलने-कूदने, और खाने-पीनेमें ही अपनेको परम सुखी समझते हैं, उसी दश वर्षकी अवस्थामें चन्द्रधर, महीनों विदेश रहकर लाखोंका वारा-न्यारा किया करता था।

व्यवसायके प्रति उसके इस अगाध-प्रेमको देखकर, देखनेवाले कहा करते थे, कि "चन्द्रधर एक दिन बड़ा भारी राजा

होगा।" बड़ोंकी भविष्यद्वाणी हाथों-हाथ फलवती हुई। चन्द्रधरने कुछ ही दिनोंमें अपनी वह विभूति बढ़ायी, कि देखनेवाले दङ्ग रह गये। देखते-देखते चन्द्रधर सौदागरके पास अगाध धन हो गया। धनसे उसने पहले तो चम्पक नगरकी जमींदारी खरीदी और जमींदारी खरीदकर बादमें उसे धीरे-धीरे तरक्की देनी शुरू किया। फल यह हुआ, कि अल्पकालमें ही चम्पक नगर प्रकाण्ड राज्यमें परिणत हो गया।

इस समय "सेठ चन्द्रधर" एक विशाल राज्यका "राजा चन्द्रधर" कहा जाता है। चन्द्रधरकी सारी प्रजा उसे जी-जानसे चाहती है। प्रजा, सम्बन्धी और नाते-रिश्तेदार सभी लोग उसके परम अनुरक्त और महाभक्त हो गये हैं। इस समय उसके पास जितनी सम्पत्ति हैं, उतनी संसारके बड़ेसे बड़े सम्राट्के पास भी न होगी। तिसपर है, उसकी परम पतिव्रता, आज्ञानुवर्तिनी रानी, पितृ-भक्त छै पुत्र और पुत्रोंकी लक्ष्मी जैसी छै बहुएँ। परिजन, बन्धु-बान्धव, आत्मीय-स्वजन और दास-दासियोंकी तो गिनती ही नहीं। उसके यहाँ इस समय लाखों सैनिक और हजारों वीर सामन्त हैं। सारांश यह, कि चन्द्रधरकी भाग्य-लक्ष्मी अपने वर-पुत्रपर आजकल दिन-रात चेरीकी भाँति चमर डुलाया करती है।

जिस समयका हम यहाँपर जिक्र कर रहे हैं, उस समय भारतमें आजकलकी भाँति, एक शहरसे दूसरे शहरको जानेके लिये स्थल-मार्गमें रेल और जल-मार्गमें जहाज-स्टीमर आदि नहीं

थे। इसलिये जो लोग उन दिनों व्यवसाय-व्यापार करते थे—सौदागरीके लिये विदेश-यात्रा करते थे, उन्हें पद-पदपर असंख्य असुविधाओंका सामना करना पड़ता था। प्रबल तरङ्गमय, अथाह और अतट समुद्र-मार्गसे पत्र-पुटकी भाँति नौका द्वारा जो लोग व्यवसायार्थ विदेश जाया करते थे, वे फिर लौटनेकी आशा घरपर ही छोड़ जाते थे। और सचमुच, उस समय जिस व्यक्तिने एक बार भी समुद्र-यात्राके लिये प्रस्थान किया, कि फिर उसे वापस लौटते नहीं देखा गया। हाँ, जो आदमी भाग्यका जबर्दस्त निकलता—जो परमात्माके यहाँसे अकाल मृत्युका पट्टा लिखाकर नहीं आता—वही मौतके सिरपर पदाघातकर सकुशल घर लौट आता था एवं उसीपर लक्ष्मीकी विशेष कृपा होती थी।

चन्द्रधर व्यापारका बड़ा व्यसनी था। प्राणोंका मोह त्यागकर, वह वर्षके आठ महीने विदेशोंमें बिताया करता था। यद्यपि इन दिनों चन्द्रधरके यहाँ अष्टसिद्धि और नवनिधियोंका निवास था, किन्तु वाणिज्यका शौक इस समय भी उसे पूर्ववत् ही था। उसने कुवेरकी भाँति धनशाली होकर भी एक दिनके लिये व्यापार करनेका लोभ नहीं छोड़ा था। उसका विश्वास था, कि "जिस कामको निरन्तर करते रहनेसे लक्ष्मीने आज प्रत्यक्ष मूर्त्ति धारणकर मेरे घरमें निवास किया है, यदि मैं इस समय उस कामको छोड़ दूँगा, तो वे मुझसे अप्रसन्न हो जायेंगी। इसके सिवा वह भगवान् शिवका परमभक्त था। भगवती पार्वती

उसकी भक्ति और श्रद्धासे बड़ी खुश रहती थीं। साथ ही उसके बल, साहस और उत्साहकी भी कहीं तुलना नहीं थी। यही कारण था, जो वह विदेश जानेमें, पड़नेवाली आपदाओंकी तनिक भी परवा न करता था—भय और आशङ्काओंकी ओर एक बार नजर उठाकर भी न देखता था।

धर्म्मकी बड़ी भारी महिमा है। चन्द्रधर परले सिरेका धार्म्मिक था। लोग कहते हैं, "जिसके पास प्रभुता होती है, उसे मद हो जाता है।" किन्तु इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं, कि चन्द्रधर इस कहावतका सोलहो आने प्रतिवादक था। मदकी बात तो दूर किनार, जिस दिनसे भगवती लक्ष्मीने उसपर अपना कृपा-पूर्ण हाथ रखा था, उसदिनसे उसमें दिन-दूनी नम्रता और आस्तिकता आ गयी थी। दान और पूजामें वह दूसरा कर्ण था। प्रभु-भक्तिमें प्रह्लादके बाद उसका नम्बर था। यहाँतक कि, चन्द्रधरको सब लोग महादेव और भगवती दुर्गाका दूसरा पुत्र साक्षात् कार्त्तिकेय समझते थे।

वास्तवमें चन्द्रधर ऐसा भक्त और साधक था, कि शिव-दुर्गाके सिवा जगत्के और किसी देवताको न तो वह जानता था और न मानता ही था। देवादिदेव महादेवने उसकी इस अनन्य भक्तिपर सन्तुष्ट होकर ही उसे 'महाज्ञान' नामकी विद्या प्रदान की थी। इस महाविद्याकी बदौलत चन्द्रधर जन्म और मृत्युके सारे रहस्य अनायास जान लेता था, साथ ही किस समय कौनसी आपत्ति आयेगी, इस बातको भी वह पहलेसे ही

जान लेता और इसीसे उसका तत्काल उचित प्रतिविधान कर देता था। दूसरे शब्दोंमें यह कहना चाहिये, कि इस विद्याके भरोसेपर वह कालकी भी कुछ असलियत नहीं समझता था। फिर था वह समस्त विपत्तियोंका नाश करनेवाली भगवती दुर्गाका भक्त। देखनेवाले उसके घरमें दिनके आठोंपहर दुर्गाका पूजन और स्तवन होता ही देखते थे। यदि वह न निर्भय होता, तो और कौन निर्भय हो सकता था?

राजा चन्द्रधरकी रानीका नाम था अलका। अलका रूपमें, गुणमें और यहाँतक कि, संसारिक सभी बातोंमें पति चन्द्रधरके ही अनुरूप थी। नगरकी स्त्रियाँ उसे देखकर कहा करती थीं, कि हमें भगवान्ने जैसा राजा दिया है, वैसी ही रानी भी दी है। पुरवासिनियोंके इस कथनमें, यदि सच पूछो, तो तनिक भी बहुउक्ति नहीं थी। क्योंकि अलका जैसी पतिव्रता थी, वैसी ही सरला थी, जैसी मिष्ट-भाषिणी थी वैसी ही स्नेहशीला थी, जैसी भक्तिमती थी, वैसी ही पारिवारिक कार्य्यमें चतुरा थी। राजरानी होकर भी अलकाको अभिमान छूतक न गया था। आजकलके सामान्य गृहस्थकी स्त्रियाँ, जहाँ पासमें चार पैसे हुए-खाने-पीनेकी तनिक सुविधा प्राप्त हुई- कि फिर जमीनपर पैर रखना भी नहीं चाहतीं। तत्काल नौकर और दाइयोंपर हुक्मत करनेके लिये लालायित होने लगती हैं। किन्तु साध्वी अलकामें यह दोष न था। वह रानी होकर भी—घरमें सैकड़ों दास-दासियोंके वर्त्तमान रहते भी अपने हाथसे ही, सारे परिवार

तथा नौकर-चाकरोंके लिये रसोई करती थी। उसके बनाये व्यञ्जनोंमें जैसा स्वाद होता था, खानेवाले कहते थे—"कि ऐसा स्वाद हमने कभी होशियारसे होशियार "महाराजिनों" के हाथकी शौक़से बनी रसोईमें भी नहीं पाया।" घरके छोटे-बड़े सभी लोगोंको वह नित्य अपने हाथों भोजन परोसती थी; इसलिये उसे सब लोग अलका न कहकर "मा अन्न पूर्णा" कहा करते थे। अलका भी पतिका अनुकरणकर शिव और भवानीकी बड़ी भक्ति करती थी। स्त्रीके भाग्यसे—ऐसी सती लक्ष्मी, राजरानी अलकाके गुण तथा पुण्यबलसे—चन्द्रधरके राज्यमें लक्ष्मी और शोभा अचला हो गयी थीं।



दिव्य-दर्शन

२

महाराज चन्द्रधरको व्यापारके लिये विदेश गये। प्रायः छै मास बीते गये हैं। जबसे उसने घर छोड़ा है, राज-रानी अलकाको उसके कुशलका मङ्गलका कुछ भी संवाद नहीं मिला। इसीसे वह आजकल नितान्त चिन्तित रहती है।

"इतने दिन तो उन्होंने पहले कभी न लगाये थे। इसबार यह नयी बात क्यों? क्या कुछ बीमार हो गये?—छिः! छिः मन कैसा नीच है! जिसकी सदा-कुशल-कामना करनी चाहिये, आज उसी पूज्य पतिदेवके अनिष्टकी आशङ्का कर रही है!"

इस प्रकारके विचार-वितर्ककर अलका कभी व्याकुल, कभी अधीर और कभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती है। पतिका हरदम ख़याल रहनेसे, आजकल उसे संसारकी कोई भी वस्तु, गृहस्थीकी कोई भी बात, भली नहीं लगती। मन बहलानेके लिये वह जब, जिस कामको हाथमें लेती है, उसीसे मन ऊब जाता है, दिन-रात केवल यही भावना लगी रहती है, कि "महाराजने इस बार इतने दिन क्यों लगाये?"

अलका भवानीकी भक्त है। इसलिये वह दिनके आठों पहर और रातकी तीसों घड़ियाँ, पतिके मङ्गलके लिये दुर्गा-भवानीसे विनय करती है। उनके प्रसन्नार्थ पूजा करती है और सुबह-शाम देवीके मङ्गल-कलशके सामने मस्तक नवाकर वर माँगती है, "हे मा मङ्गलचण्डी! राजी-खुशीके साथ राजाको घर ले आओ। मैं तुम्हारी षोड़शोपचारसे पूजा करूँगी—हृदय चीरकर रक्त दूँगी।"

एक दिन रात्रिका समय था। गृहस्थीके सारे आवश्यकीय कामोंसे निपटकर राजरानी अलका, शयन करनेके लिये शयनागारमें चली गयी थी; किन्तु पलङ्गपर पौढ़ते ही फिर पूर्वोक्त चिन्ताओंने आ घेरा। एक घड़ी बीती, दो घड़ी बीती; पर अलकाको निश्चिन्तताके साथ नींद न आ सकी। अनेक प्रकारकी आशंकाओंने ऐसा आकर दावाया, कि आँखोंकी सारी नींद छूमन्तर हो गयी। कितनी ही बार करवटें बदलीं, देरतक आँखें मींचे रही, पर क्षणभरके लिये भी चैन न पड़ा। आखिर वह पलङ्ग छोड़कर कमरेसे बाहर चली आयी। हाथ, पैर और मुँह धोया, साड़ी बदली तथा शुद्ध भावसे पूजाकी सामग्रीका संग्रह किया। सब चीजें एकत्रित हो जानेपर अलकाने धीरे-धीरे चण्डीके मन्दिरमें प्रवेश किया। मन्दिरके भीतर जा और सामग्रीको यथा-स्थान रखकर, रानीने मन्दिरका दर्वाजा भीतरसे बन्द कर लिया। अनन्तर वह निश्चिन्तताके साथ पूजा करनेके लिये आसनपर बैठ गयी।

पूजा करती-करती अलका, देवीके ध्यानमें ऐसी लीन हो गयी, कि उसका समस्त वाहरी ज्ञान लुप्त हो गया। मानों दुर्गा और अलका एक हो गयीं। मन एकाग्र तथा वाह्य-अनुभव-शून्य हो गया। सारी चेष्टाएँ विस्मृत हो गयीं; शरीर निस्पन्द और अचल हो गया।

धीरे-धीरे रात्रिके तीन पहर बीत गये। पर अलकाको इस बातकी तनिक भी खबर नहीं थी। इस समय भी वह पूर्ववत् ध्यानावस्था थी। स्वामीकी मङ्गल-कामनाके सिवा उसके मनमें और कोई बात नहीं थी। जैसे ही रात्रिके चतुर्थ प्रहरका आरम्भ हुआ, वैसे ही अलकाको उस ध्यानावस्थामें एक बड़ा विचित्र स्वप्न दिखायी दिया।

उसने देखा, मन्दिरकी खुली खिड़कीके रास्तेपर, जहाँसे अन्धकार-पूर्ण आकाशमें झिलमिल करते हुए कुछ तारे देख पड़ते हैं --वहाँ सहसा एक अद्भुत ढङ्गका प्रकाश फूट पड़ा है। उस प्रकाशके मध्य-भागमें एक अपूर्व सिंहासन है और उस सिंहासनपर एक अपूर्व देवी-मूर्त्ति बैठी हुई है।

अलकाने आश्चर्य्यसे अवाक् होकर देखा, सिंहासन मानों साँपों द्वारा बना है। क्योंकि उसके चारों ओर साँप ही साँप देख पड़ते हैं--साँपोंके ही पाये हैं और साँपोंके ही उस सिंहासनपर कंगूरे लगे हुए हैं। उक्त अद्भुत सिंहासनपर कमल-दलोंका आसन बिछा हुआ है और उस आसनपर एक अपूर्व सुन्दरी, रक्त-पद्म-वर्णा देवीकी प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमाके सर्वाङ्गमें

भी साँपोंके ही आभूषण सुशोभित हैं, माथेपर साँपोंका ही सुन्दर मुकुटशोभा पा रहा है। सिंहासन, गहने और मुकुटके फणियोंके मस्तकोंमें जो मणियाँ हैं, उनसे एक ऐसा उज्ज्वल प्रकाश निकल रहा है, जिससे आँखें भुलसी जाती हैं।

देवीने आश्चर्य-चकित अलकाको सम्बोधन करके कहा—"रानी ! मेरा नाम पद्मादेवी है। सप्तमात्रिकाओंसे मेरा माहात्म्य जुदा है। मैं समस्त देवियोंसे अधिक शक्ति रखती हूँ। अतः तुम चण्डी-घटके पास मेरा घट भी स्थापित करो। मेरे वरसे तुम्हारी सारी वासनाएँ पूर्ण हो जायेंगी। तुम्हारे स्वामी सानन्द घर लौट आयेंगे और यदि तुम मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करोगी, तो मेरे कोपसे तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा। तुम्हारी राजधानीमें नगरके सिरेपर जो 'भालो माई' नामकी एक स्त्री रहती है, उसके घरमें मेरा मङ्गल-घट स्थापित है। तुम मेरे अनुरोधसे स्वयं जाकर देख आओ, कि उसके यहाँ धन-वैभवके कितने ढेर लग रहे हैं, बेटे-पोतोंकी कितनी भरमार है। यदि तुम भी वैसी सुख-सम्पद चाहती हो, तो वही घट मँगवाकर अपने यहाँ स्थापित कर लो। बहू-बेटोंके साथ धूम-धामसे मेरी पूजा करो। इच्छानुसार वर माँगो। सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी—तुम्हारे स्वामी अगाध धन—दौलत लेकर शीघ्र ही लौट आवेंगे।"

इतना कहकर देवी अन्तर्द्धान हो गयीं—अपूर्व आलोककी छटा आकाशमें मिल गयी।

अलकाका ध्यान टूट गया। स्वप्न-भङ्ग होते ही वह सहसा

च.क उठी। ...या। क ...वोंको मलकर देखा। मालूम हुआ, उषाकी आरम्भिक छटासे आकाश लाल हो उठा है एवं खिड़कियोंके रास्तेसे उस छटाने आकर मन्दिरके भीतरके उज्ज्वल आलोकोंको म्लान कर दिया है।

अलकाकी आँखोंमें उस समय भी स्वप्नका चित्र अङ्कित था। रह-रहकर देवीकी कही हुई सारी बातें याद आ रही थीं। अलकाने एक बार सारी बातोंपर मननकर लम्बा श्वास लिया और यादको पद्मा तथा चण्डीको भक्तिके साथ प्रणामकर वह मन्दिरसे बाहर निकल आयी।



माथेपर साँपों

पद्म-परिचय



शरद् ऋतुका मास था। नन्दन काननकी पद्म-वाटिकामें स्वर्गके सारे सुख मूर्तिमान होकर आ विराजे थे। वहाँके सुन्दर दृश्य और स्वर्ग-सुखोंको देखनेके लिये आये हुए देव और यक्षोंका उन दिनों वहाँ खासा मेला लगा रहता था।

एक बार उसी पद्म-वाटिकामें देवादिदेव महादेव आये। वाघाम्बरधारी, त्रिशूलपाणि शिवके साथ उस समय एक भी सेवक नहीं था। वे कैलासपर बैठे हुए भगवद्-भजन कर रहे थे, कि नारदके मुखसे उन्होंने पद्म-वाटिकाकी प्रशंसा सुनी। योगियोंका मन ही तो ठहरा, जो बात जँच गयी, फिर उसके पूर्ण होनेमें विलम्ब नहीं होता। महादेव कैलासपर अकेले बैठे थे, अतः अकेले ही उठकर नन्दन-काननकी ओर चल पड़े। नन्दन-काननमें पहुँचनेपर उनकी भेंट वेद-वक्ता ब्रह्माके साथ हुई। ब्रह्मा उस समय सपरिवार थे। साथमें कुमारी सरस्वती भी थीं। सरस्वतीको देखकर महादेवके मनमें सहसा कन्या-

स्नेह प्रकट हो आया। कन्या-स्नेहके प्रकट होनेके साथ ही उस अनादि पुरुषकी इच्छा-शक्तिसे उसी पद्म-वाटिकाके भीतर, खिले कमलकी भाँति, एक अपूर्व सुन्दर कन्या पैदा हुई। मानस-कन्या होनेके कारण उसका नाम हुआ मनसा देवी और पद्म-वाटिकामें जन्म होनेके कारण उसका नाम पद्मादेवी भी पड़ा।

भगवती दुर्गाको पद्म-वाटिकामें हुए इस काण्डकी तनिक भी खबर न थी। महादेवको जब उनका स्मरण हुआ और सोचा, कि सम्भव है, देवी दुर्गा इस कन्याको देखकर क्रुद्ध हो जायें, तब भयसे, उन्होंने कन्याको अपने साथ कैलास ले जाना उचित न समझा। अतः पद्मादेवी उस समय पाताल-लोकमें भेज दी गयी। पाताल-लोकके नागोंने, महादेव-पुत्री होनेके कारण, पद्माको अपनी रानी माना और तबसे वे सारे काम उसी देवीके आज्ञानुसार करने लगे। अर्थात् पद्मा पाताल-लोकमें जाकर साँपोंकी रानी बन गयी।

वहाँपर कुछ दिन रहनेके बाद एक बार पद्माका मन पिताको देखनेके लिये अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने एक दिन समस्त नागोंको एकत्रितकर, उनके सामने अपने मनका अभिप्राय सुनाया और बादको उसपर सबकी सम्मति माँगी। सम्मति देते समय कितने ही वयोवृद्ध नागोंने उसे कैलास न जानेका अनुरोध किया; किन्तु पद्माका मन तो पिताके पास जानेके लिये बेहद उत्कण्ठित था, अतः उसने किसीका भी कहा न माना और

पितृ-दर्शनके लिये कैलास चली गयी। किन्तु वहाँ—"हिते विपरीतं फलम्" की कहावत चरितार्थ हुई।

पद्मा उस समय युवती थी; अतः उसका सौन्दर्य भी उस वक्त विकसित हो रहा था। अपूर्व रूपकी छटासे दशों दिशाएँ प्रभामय हो उठी थीं। उस समय जो कोई भी उसके रूपको देखता था, वही आश्चर्यसे अवाक् हो रहता था। चण्डीने उसे देखकर सोचा—"मालूम होता है, महादेवने लुक-छिपकर दूसरा विवाह कर लिया है और उसी सौतसे यह कन्या पैदा हुई है।" यह विचार उत्पन्न होते ही पार्वती क्रोधसे सचमुच रण-चण्डी बन गयीं। सौतकी कन्या जानकर उन्होंने पद्माके साथ बड़ा भारी झगड़ा खड़ा कर दिया। महादेवने पार्वतीको कितना ही समझाया, पद्माके जन्मकी कथा भी सुनायी, पर भगवतीके मनको किसी प्रकार भी प्रबोध न हुआ। महादेव, लाख चेष्टाएँ करके भी उन्हें शान्त न कर सके। दुर्गा इस बातको देखकर और भी बिगड़ उठीं, कि सौतकी लड़कीने मेरे यहाँ, पितासे कितना अधिक आदर पाया है!

पद्मा भी बापकी लाड़ली लड़की थी। वह यह सब सहज हीमें क्यों सहने लगी थी? बापके बलपर उसने पार्वतीको एकके बदलेमें दो सुनायीं। सारांश यह, कि पद्मा और पार्वतीमें उस समय खूब ठन गयी। किन्तु दुर्गा तो दुर्गा ही ठहरीं। उनकी समता भला नवों देवियोंमें कौन कर सकता था। अतः पार्वतीकी जीत और पद्माकी हार हो गयी। हार जानेसे पद्माको

पार्वतीपर वड़ा क्रोध हुआ। यदि बापका भय न होता, तो पद्मा और भी तीन पाँच लाती और फलस्वरूप दुर्गाके हाथोंसे उसे और भी लाञ्छना सहनी पड़ती।

पाठिकागण! यदि सच पूछिये, तो इस युद्धका बहुत कुछ दोष पद्माके माथेपर मढ़ा जा सकता है। क्योंकि, लाख हो, पार्वती उसकी मातृस्थानीया, अतएव पूजनीया थीं। यह ठीक है, कि सौतेली माताएँ वैमात्रिक सन्तानोंको अच्छी नजरसे नहीं देखतीं। पर विनय और नम्रता ये दो ऐसी शक्तियाँ हैं, जो पत्थरको भी पिघलाकर मोम बना देती हैं। यदि पद्मा पार्वतीके दो कटु-वाक्य सुनकर बदलेमें चार विनय-युक्त वचन कहती तो पार्वतीका इतना कड़ा हिया नहीं था, जो वास्तविक पुत्रीको पुत्री समझकर आदर न देतीं। अभिमान और अशिष्टता तो पतनके जबर्दस्त कारण हैं। यही कारण था, जिससे यहाँपर पार्वतीकी जीत और पद्माकी पराजय हुई। अस्तु,

विमातासे लड़कर पद्मा अब निरन्तर पार्वतीसे अपनी पराजयका बदला चुकानेकी फिक्रमें रहने लगी। उसने पहले पृथ्वीकी परिक्रमा की। पृथ्वी-परिक्रमा करते समय उसने देखा, कि मर्त्यलोकके प्रायः सभी मानव पार्वतीके परम भक्त हैं। वे और किसी देवताकी पूजा करें या न करें, पर चण्डीकी पूजा अवश्य करते हैं। उसने सोचा, दुर्गाके बड़ी होनेका एक कारण यह भी है। यदि किसी तरह संसार मेरी भी पूजा करने लगे, तो मैं भी पार्वतीकी समता प्राप्त कर सकती हूँ। क्योंकि

भक्तोंके भरोसेपर ही भगवान् 'भगवान्' कहलाते हैं। पार्वती-को सबसे बड़ा जोर अपने भक्तोंका ही है। लोग सर्वापेक्षा उसीकी आराधना अधिक करते हैं, इसीलिये अन्य माताओंमें उसका अधिक मान है। किन्तु पार्वती मुझसे बड़ी नहीं हो सकती। क्योंकि पार्वती जिनकी पत्नी है, वे मेरे पिता हैं। जो सामर्थ्य भगवान् शिवके प्रतापसे चण्डीको प्राप्त है, वही सामर्थ्य पिताकी कृपासे मुझे भी प्राप्त है। इतनेपर यदि विमाता संसारकी आराध्य देवी हो सकती है तो मैं क्यों नहीं हो सकूँगी? अतः जिस तरह भी हो, अब मुझे संसारके लोगोंसे पूजा प्राप्त करनी ही चाहिये। अन्यथा मैं किसी प्रकार भी चण्डीके समान न हो सकूँगी। फिर तो मुझे सदा उसके नीचे ही रहना पड़ेगा।"

इतना सोचकर और पृथ्वीकी परिक्रमा पूर्णकर पद्मा फिर पिताके पास गयी एवं उनके सामने बड़ी करुण भाषामें अपने मनका भाव प्रकट किया। साथही इस बातका भी उपाय पूछा, कि वह किन साधनोंका अवलम्बन करके संसारसे पूजा प्राप्त कर सकेगी।

महादेव पद्माकी बातोंको सुनकर बड़ी विकट समस्यामें पड़ गये। एक पुत्री है, दूसरी पत्नी, इनमेंसे किसको ऊँचा बनाया जाये और किसको नीचा। यदि पत्नीका आसन ऊँचेपर स्थापितकर, पुत्रीको छोटी बनाया जाता है, तो आजहीसे महादेव सन्तान-घातक कहलाते हैं। यदि पुत्रीको बढ़ाकर पत्नीको नीचा बनाया जाता है, तो मातृत्वकी महिमा घटती

है—विकट पसोपेस है। बहुत कुछ सोच-विचारके बाद उन्होंने स्थिर किया, कि पद्मा मेरी सन्तान अवश्य है, पर भगवती पार्वतीके आगे उसे उच्चासन दिलानेसे संसारका सारा सुधी-समाज मुझे पक्षपाती कहने लगेगा। अतः पद्मा यदि अपने उद्योग और अध्यवसाय द्वारा पार्वतीकी समता प्राप्त कर सके, तो मैं निर्दोष रहूंगा और संसार भी दोनोंके गुणोंसे भले प्रकार परिचित हो जायगा। इसलिये बोले—"पद्मे! तुमने जो कुछ कहा है और जैसा तुम चाहती हो, वह सहज बात नहीं है। पार्वती युगोंसे संसारसे पूजा और प्रतिष्ठा पा रही हैं। उनकी श्रेष्ठता-को सृष्टिके तीनों भुवन स्वीकार कर चुके हैं। किन्तु एक उपायसे तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। चन्द्रधर पार्वतीका पहला और प्रधान भक्त है; यह बात संसार कई बार स्वीकार कर चुका है। अतएव वह भक्तोंका सिरमौर और साधकोंका सम्राट् है। संसारके सारे भक्त भक्ति और पूजाके कार्य्यों में उसीका अनुकरण किया करते हैं। अतः उसने यदि तुम्हारी श्रेष्ठताको स्वीकारकर पूजा न की, तो फिर जान लो, कि तुम अन्य किसी प्रकार भी संसारसे पूजा न पा सकोगी।"

पिताकी बात सुनकर पद्मा उसी दिनसे चन्द्रधर सौदागरसे पूजा प्राप्त करनेकी चेष्टा करने लगी; पर चेष्टाओंका सफल होना कोई आसान काम न था। क्योंकि चन्द्रधर शिव और पार्वतीका अनन्य भक्त था। उसका हृदय निरन्तर शिव-पार्वतीके तेजसे ही भरा रहता था। उसमें और किसी देवताके लिये स्थान न था।

कलहका सूत्र

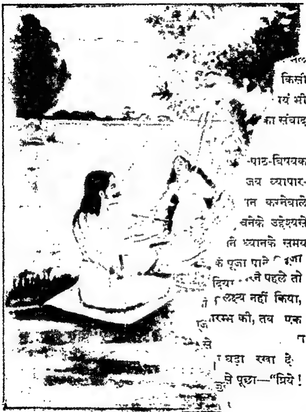
४



सुन्चस्पक नगरमें आज बड़ा आनन्द मनाया जा रहा है। घर-घर आनन्द वधावे हो रहे हैं। जगह-जगह प्रसन्नताके फव्वारे छूट रहे हैं। कारण यह है, कि महाराज चन्द्रधर आज बहुत दिनों बाद वाणिज्य करके स्वदेश लौटे हैं।

पाठक! महारानी अलकाके आनन्दका तो आज कहीं ठिकाना ही नहीं। उस दिन स्वप्नमें पद्मादेवीका आदेश पाकर, प्रातःकाल होते ही अलका भालोमाईके घर गयी थी और वहाँसे पद्माका घट लाकर उसने उसे चण्डी-घटके पासही स्थापित कर दिया था। अनन्तर नहा-धोकर वहू-वेटोंके साथ उसने बड़ी धूमधामके साथ पद्माका पूजन कियां एवं वरस्वरूप पतिके सानन्द घर लौटनेकी प्रार्थना की। अब इतना शीघ्र राजाके घर लौट आनेसे पद्माके ऊपर उसकी भक्ति पहलेसे दशगुनी बढ़ गयी है। इसीसे आज समस्त परिवारको साथ लेकर वह पद्मा और चण्डीकी षोड़शोपचार पूजा करनेके लिये व्यस्त देख पड़ रही है।

राजा चन्द्रधरको अभीतक इस बातका पता न लग सका था कि, रानी अलका आजकल पद्माकी पूजा करने लगी है।



नल
किसी
रयं भी
का संवाद

-पाठ-विषयक
जय व्यापार-
ान करनेवाले
वनेके उद्देश्यसे
ति ध्यानके समय
के पूजा पाने आ
दिया ने पहले तो
लक्ष्य नहीं किया,
रम्भ की, तब एक
घड़ा रखा है
से पूछा—"प्रिये!
हुई। उसने
जिनेसे लेकर
सुनते ही

पार्वतीकी भक्त-रक्षा।
यदि यह तुमपर भी जुल्म करे, तो लो, मैं तुम्हें यह हस्तालको
Durga Press, Calcutta.
देखिये—पृष्ठ

यह बात उससे किसीने कही भी नहीं थी। अलका अपने पतिके स्वभावसे भले प्रकारसे परिचित थी। वह इस बातको भले प्रकारसे जानती थी, कि महाराज महादेवके सिवा और किसी भी देवताकी पूजा करनेवाले नहीं हैं; इसीसे उसे स्वयं भी पतिको, तत्काल पद्माके स्वप्न और उसकी पूजा-प्रतिष्ठाका संवाद देनेका साहस नहीं हुआ।

किन्तु महाराज चन्द्रधरको पद्माकी पूजा-पाठ-विषयक चेष्टाओंका पता विदेशमें ही लग गया था। वे जब व्यापार-वाणिज्यसे निपटकर स्वदेश लौटनेके लिये प्रस्थान करनेवाले थे और उस समय जब उन्होंने सकुशल घर पहुँचनेके उद्देश्यसे भगवतीका अनुष्ठान किया था तब चण्डीने ध्यानके समय अपने वर पुत्रको, पद्माकी प्रतिद्वन्द्विता, उसके पूजा पाने [illegible] प्रयत्न तथा सारे जोर-जुल्मोंका वर्णन कर दिया [illegible] पहले तो यह बात भी कह दी थी, कि पद्माको [illegible] लक्ष्य नहीं किया, चन्द्रधरसे पूजा पाये संसारमें उसकी पू[illegible]रम्भ की, तब एक चण्डीने कहा था, "चन्द्रधर! पद्मा मुझसे [illegible] न समान बननेका असंभव प्रयत्न कर रही है। [illegible] घड़ा रखा दे भनोंमें न फंसना और यदि वह तुमपर भी जु[illegible]से पूछा—"प्रिये! तुम्हें यह हेन्तालकी लाठी देती हूँ। [illegible]सके [illegible] पद्मा ही तुम्हारे पास आवेगी और न उसके [illegible] हुई। उसने तुम्हारे पास फटकने पायेंगे। इसकी गन्ध जि[illegible]नेसे लेकर जायेगी; उतनी दूरतक पद्माका स्वप्नमें भी प्रभाव न ज[illegible]सुनते ही

पर देखना, इस लकड़ीको सावधानीसे रखना। यह खो न जाये, अन्यथा पद्मा तुम्हें मनमाना परेशान करेगी।"

चन्द्रधरने ध्यानमें ही चण्डीकी आज्ञाको स्वीकारकर अक्षरशः पालन करनेकी प्रतिज्ञा की। साथ ही उस दिनसे वह हरतालकी लकड़ीको भी हरदम पास रखने लगा। उसे क्षणभरके लिये भी अपनेसे दूर न करता था।

एक तो पार्वती-भक्त राजा चन्द्रधर शिव और शिवाके अलावा और किसी देवताको जानता ही न था—मानता ही न था, तिसपर जब सुना, कि पद्मा पार्वतीकी दुश्मन है और उनके बराबर बननेका प्रयत्न कर रही है, तब तो वह उसपर एकदम खड्गहस्त हो उठा। उसने पार्वतीकी आज्ञासे पद्माको अपना भी
ठिका[illegible] समझ लिया और उसी समय हरतालकी लाठीको ऊपर
प्रातःकाल हा[illegible]ड़किड़ाते हुए कहा—"अगर चामुण्डा पद्मा मेरे
वहाँसे पद्माका वट [illegible]दस करेगी, तो मैं इसी लकड़ीसे उसकी
स्थापित कर दिया था [illegible]।"
उसने बड़ी धूमधामके [illegible] समय इस बातका स्वप्नमें भी खयाल
पतिके सानन्द घर [illegible]जिस पद्मापर उसका इतना क्रोध है, उसी
राजाके घर लौट [illegible]की रानी अलकाने चण्डीके मन्दिरमें, ठीक
दशगुनी बढ़ गयी [illegible] स्थापितकर पूजना शुरू कर दिया है।
लेकर वह पद्मा [illegible]भी इस बातका पता नहीं था, कि राजा पद्माके
व्यस्त देख प[illegible]वत हैं और उसके जानी दुश्मन बन गये हैं। वह तो
राजा [illegible]यही समझे बैठी थी, कि राजा पद्माको न जानते होंगे।

किन्तु जब वे स्थिर होकर निश्चिन्त मनसे बैठेंगे, तो समय और सुविधा देखकर वह उनसे पद्माकी कथा कहेगी और ऐसी, प्रत्यक्ष, शीघ्र फल देनेवाली देवीकी पूजा करनेके लिये, हाथ पैर जोड़कर प्रार्थना करेगी। पर भाग्यके दोषसे, सोची हुई बात नहीं हुई। हुआ वही—"जो राम रचि राखा।"

जिस समय अलका अपने पुत्र और बहुओंके साथ बड़े उत्साह और धूमधामसे पद्माकी पूजा करनेके लिये तैयारी कर रही थी, ठीक उसी समय राजा चन्द्रधर भी, यह सोचकर, कि "चलें, यात्रा-समाप्तिके उपलक्ष्यमें—निर्विघ्न घर आ पहुँचनेके एवजमें—मा चण्डीकी पूजा कर आवें"—पूजाकी सारी सामग्री सजवाकर रानीके साथ ही मन्दिरमें गया।

मन्दिरमें जाकर सबने पहले खूब धूमधामसे चण्डीकी पूजा की। पूजाकी श्रद्धा और धूमधामके उल्लासमें चन्द्रधरने पहले तो चण्डी-घटके पासमें रखे पद्माके घटपर वैसा लक्ष्य नहीं किया, किन्तु जब अलकाने पद्माकी पूजा करनी आरम्भ की, तब एक दूसरे घटपर उसकी नजर पड़ी।

चण्डी-घटके पास पूजाका एक दूसरा घड़ा रखा दे० चन्द्रधरको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अलकासे पूछा—"प्रिये! यह किस देवताका घड़ा है?"

अब रानी अलकाको चुप रहनेकी हिम्मत न हुई। उसने राजाको धीरे धीरे, खूब समझाकर, स्वप्नमें पद्माको देखनेसे लेकर घट-स्थापनतक एक एक करके सारी बातें कह सुनायीं। सुनते ही

चन्द्रधरके चेहरेपरकी शान्तिकी सारी चमक जाती रही, क्रोधसे चेहरा तमतमा उठा और आँखें लाल हो आयीं। दाँत किस किसाने लगे। काँपते हाथोंसे हरतालकी लाठीको ऊपर उठाया। राजाकी यह भयङ्कर मूर्त्ति देखकर अलकाके प्राण काँप उठे।

उसने शीघ्रतासे स्वामीके चरणोंमें सिर रखकर, उन्हें शान्त करनेका प्रयत्न किया। कहा—"महाराज! यह पद्माकी पूजा करनेका ही फल है, जो आप अगाध धन-रत्न लेकर इतनी शीघ्रतासे घर लौट आये। आपको शायद मालूम नहीं है, कि हमारे नगरकी साधारण स्त्री, पहले रोटियोंको भी मुहताज रहनेवाली भालोमाई पद्माकी पूजाकर, आज कितने सुख-सौभाग्यकी मालकिन बनी बैठी है। ऐसी महिमामयी देवीपर आपको स्वप्नमें भी क्रोध न करना चाहिये। आपसे मेरी हाथ जोड़कर विनीत प्रार्थना है, कि आप निर्द्वंप होकर, चण्डी और पद्माको एक समभकर प्रसन्नमनसे दोनोंकी पूजा करें। फलस्वरूप हमारे सुख-सौभाग्यकी सीमा न रहेगी।" किन्तु अलकाकी इस प्रार्थनाका चन्द्रधरपर कुछ भी असर न हुआ। उसने रानीकी एक भी न सुनी। चन्द्रधर जैसे-जैसे पद्माकी प्रशंसा सुनता जाता था, वैसे ही वैसे उसका क्रोध भयानक स्वरूप धारण करता जाता था। अन्तमें अलकाके सब कुछ कह चुकनेपर चन्द्रधर मेघकी भाँति गरजता हुआ बोला—"रानी! क्या पागल हो गयी हो? तुम्हें ऐसी बुरी सलाह किसने दी? माँके पास, मेरे ही घरमें उनकी शत्रुको स्थान! जिन हाथोंसे

अपनी माका पूजन करता हूं, क्या उन्हीं हाथोंको, माके शत्रुको पूजाकर कलङ्कित करूँगा ? छिः छिः ! धिक्कार है, तुम्हारी इस समझको ! सुनो, अगर मांको प्रसन्न रखना चाहती हो तो इस घड़ेको अभी फेंक दो—इसी समय इस चामुण्डाको विदा दो।"

भयसे सिर काटती हुई अलका, स्वामीको इस अपकर्मसे रोकने जाती थी ; किन्तु अवसर न मिला। राजाने क्रोधसे तमतमाकर, रुद्र-मूर्ति धारणकर बिजलीके वेगकी तरह हरतालकी लाठीको घुमाकर, पद्माके घटपर जोरसे मार दिया। लाठीके लगते ही घट चूर चूर हो गया। पूजाके समय आवाहन होनेसे पद्मा उस समय घड़ेमें आविर्भूत हो गयी थी, किन्तु हरतालकी लाठीकी चोट खाकर वह तत्काल आकाशमें उड़ गयी।

अनन्तर चन्द्रधरके हुकमसे, उसी दिन पुराना मन्दिर तोड़वा दिया गया और फिरसे चण्डीका एक नया मन्दिर बनवाया गया। साथ ही चन्द्रधरने भालोमाई तथा अन्यान्य पद्माके पूजकोंके यहाँ सैनिक भेजकर उनके यहाँसे भी पद्माके घट उठवाकर फेंकवा दिये, एवं राज्यभरमें इस बातका ढिंढोरा पिटवा दिया, कि "जो कोई पद्माकी पूजा छोड़, नाम भी लेगा उसे तत्काल राजाकी ओरसे दण्ड दिया जायगा। राज्यका हरएक आदमी जहाँ भी कहीं नाग(सांप) देखे, उसे वहीं तत्काल मार डाले। जो आदमी ऐसा न करेगा, वह भी राज-शत्रु समझा जाकर तत्काल दण्डित किया जायगा।"

दण्ड-नीति

५

किसी प्रकारका भी आदर क्यों न हो, संसारमें केवल दो उपायोंसे प्राप्त होता है। एक स्वाभाविक भक्तिकी प्रेरणासे, दूसरे भयसे। पद्माने चन्द्रधरसे पूजा पानेके लिये पहले उसकी स्त्रीको अपनी क्षमता दिखाकर, उसके हृदयमें वैभवका लोभ उत्पन्नकर, भक्ति उत्पन्न करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु उसमें वह सफलमनोरथ न हुई। उसका पहला वार खाली ही गया। अतः सोचा कि, अब सीधे ढंगसे काम न चलेगा। अब चन्द्रधरको भय दिखाकर पूजा प्राप्त करनी चाहिये। इसलिये वह आजकल दूसरी श्रेणीके उपायका अवलम्बन करनेकी तैयारीमें लगी हुई है।

हम कह आये हैं, कि नाग-लोकके सारे नाग पद्माको अपनी रानी मानते थे और इसी कारण वे पद्माके इशारेपर अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिये हरदम तैयार रहते थे। अतः पद्मा उन लोगोंसे सहायता पानेके लिये पहले नाग-लोक गयी। नाग-लोकमें जाकर उसने पहले एक 'दरबारे-आम' किया और उसमें नाग-लोकके सारे नागोंको बुलाकर उन्हें चम्पक नगरके

राजा चन्द्रधरके साथ अपनी शत्रुता होनेकी कथा कह सुनायी। साथ ही यह भी कहा, कि "चन्द्रधरने चम्पक नगरके सारे नागोंको मार डालनेका हुक्म दिया है। इससे तुम्हारे बहुतसे भाई मारे जायेंगे। अतएव तुम लोगोंको उचित है, कि अभी चन्द्रधरके समस्त परिवारको श्मशान बना दो। परन्तु देखना! कहीं चन्द्रधरको न मार डालना। यदि वह मर जायेगा, तो संसारमें फिर मेरी पूजाका प्रचार न हो सकेगा।"

नागोंको इस प्रकारकी आज्ञा दे, पद्मा फिर चम्पक-नगरमें चली आयी और वहाँपर वह नागोंको प्रत्येक काममें यथोचित मदद और परामर्श देनेके लिये वहीं रहने लगी।

चम्पक-नगरमें चन्द्रधरका एक बहुत ही सुन्दर और सुरम्य बाग था। वहाँके लोग उस बागको 'चन्द्रोद्यान' कहते थे। इस बागकी शोभा-सम्पद् ऐसी अपूर्व थी, कि देश देशान्तरके लोग, अपनी बातोंके प्रसङ्गमें जब कभी स्वर्ग-वन, नन्दन-काननका जिक्र करते, तो इस चन्द्रोद्यानके साथ ही उसकी उपमा दिया करते थे। पद्माके हुक्मसे नागोंने अनेक प्रकारके बनावटी वेश बनाकर पहले उस चन्द्रोद्यानको नष्ट करना शुरू किया।

धीरे-धीरे बागको महा श्मशान बनता देख, मालियोंने एक दिन चन्द्रधरको जाकर सारा समाचार कह सुनाया। उन्होंने कहा—"महाराज! चन्द रोजोंसे हम बागमें रात दिन रहकर देख रहे हैं, कि बिना बिजली और आगके सारे पेड़ जल-जलकर खाक हुए जाते हैं। साथ ही वहाँके सारे फलोंमें जहर पैदा हो

गया है, मानों उन्हें साँप सूँघ गये हों। जो कोई भी उन्हें खाता है, वह फौरन मर जाता है।"

खबर सुनते ही चन्द्रधर समझ गया, कि ये सारे उपद्रव चामुण्डा पद्माके हैं। पद्माका खयाल आते ही राजाका मुंह क्रोध और घृणासे तमतमा उठा। वह तत्काल हरतालकी लाठी लेकर "चन्द्रोद्यान" की ओर चल दिया।

दूरसे ही हरतालकी गन्ध पा कपटवेशी नागोंको मानों मौत-की सूचना हो गयी। इसलिये वे सब अपने अपने प्राण लेकर पद्माके पास भाग चले। उधर बागमें पहुँचकर सौदागारने अपनी महाज्ञान-विद्याके प्रभावसे नष्ट हुए समस्त वृक्षोंको हरा-भरा कर दिया, मुरझाये हुए फूलोंको ताजा बना दिया और जहरीले फलोंमें फिर पहलेका सा स्वाद भर दिया। बागका नष्ट हुआ सौन्दर्य्य फिर लौट आया। उसकी पहले जैसी शोभा थी, वैसी शोभा, स्वर्गकी शोभाको लज्जित करती हुई दिगन्तमें व्याप्त हो गयी।

नागोंके मुखसे चन्द्रधरकी असीम शक्तिका समाचार सुनकर अब पद्माने क्रुद्ध हो चुने-चुने महाभयंकर नागोंको उसके पुत्रों-का नाश करनेके लिये भेजा।

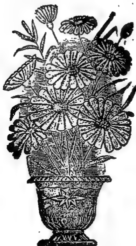
एक दिन चन्द्रधरका बड़ा लड़का चन्द्रोद्यानमें सैर कर रहा था, कि इसी समय एक महा भयानक विषधर साँपने, पीछेसे आकर उसके पैरमें काट लिया। लड़केसे फिर एक पग भी आगे न बढ़ा गया और वह वहीं घूमकर गिर पड़ा। मँझला

बेटा फूल चुन रहा था, कि बेचारा साँपके काटनेसे वहीं छटपटा कर रह गया। चार लड़के पाठशालासे पढ़कर घर लौट रहे थे, कि रास्तेमें ही सर्पाघातसे उनकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार एक-एक करके छहों राजपुत्र सर्पाघातसे मर गये।

राजपुत्रोंकी उक्त प्रकारसे मृत्यु होनेके कारण चारों ओर भयानक हलचल मच गयी। राज्यभरमें रुदनके स्रोत बह चले। स्त्री और पुरुष, बालक और बच्चे, सब सिर और छाती पीटकर "हाय! हाय!" करने लगे। चन्द्रधरने जब अपने छहों पुत्रोंकी मृत्युका संवाद सुना, तब उसने घृणाकी हँसीसे केवल एक बार हँस दिया। इसके बाद उसने अपनी महाज्ञान-विद्याके प्रभावसे एक एक करके सब राजपुत्रोंको जिला लिया। इस प्रकार एक बार नहीं, दो बार नहीं—बारम्बार पद्माके नाग चन्द्रधरके पुत्रोंको काटने लगे और चन्द्रधर हर बार अपनी महाज्ञान-विद्याके प्रभावसे सबको बचा लेने लगा। इसलिये उनका कोई अनिष्ट या अमंगल नहीं हुआ। इधर बारम्बार हार खानेकी वजहसे पद्माका क्रोध बेतरह बढ़ने लगा। अब वह रात-दिन इसी फिक्रमें रहने लगी, कि किस तरह चन्द्रधरको आपत्तिमें फँसाया जाय—किस प्रकार डरा-धमकाकर उससे पूजा पायी जाय। उधर पद्मा जितने-जितने काण्ड करने लगी, चन्द्रधर सौदागर उतना ही उसको घृणाकी नजरसे देखने लगा, एवं मनही मन उसका घोर शत्रु बन बैठा।

हारपर हार खाकर पद्मा समझ गयी, कि महाज्ञान-विद्याके

मौजूद रहते वह चन्द्रधरका कुछ भी न बिगाड़ सकेगी, वरन् उलटे अपमान और लाञ्छनाएँ ही पल्ले पड़ेंगी। अब जिस तरह भी हो पहले महाज्ञान-विद्याका हरण करना चाहिये। महाज्ञानके पास न रहनेपर ही सौदागर उसके वशमें आ सकेगा। यह निश्चयकर पद्मा अब अपनी कार्य्य-सिद्धिकी चेष्टामें लगी।





वञ्चना



एक दिन रात्रिका समय था। महाराज चन्द्रधर और महारानी अलका अपने शयनागारमें पड़े-पड़े इधर-उधरकी बातें कर रहे थे। विशेषकर इस समय विदेश-यात्राका ही जिक्र हो रहा था। रानीने कहा—"नाथ! आपने जैसी-जैसी भीषण आपत्तियोंका—रास्तेमें आनेवाले जैसे भयानक तूफानोंका जिक्र किया, उनको सुनकर तो मेरा कलेजा दहल आता है। किन्तु आपके पास तो हरतालकी लकड़ी और महाज्ञान-विद्या है—आपका तो कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता, पर अब आप विदेशमें होंगे, और यहाँपर नित्यप्रति पद्माके उपद्रव होतेही रहते हैं, तब मैं अपने बच्चोंकी रक्षा किस तरह करूँगी?"

चन्द्रधरने कहा—"प्रिये! इस बार मैंने यह बात पहलेसे ही सोच रखी है, कि यदि इस बार व्यापारके लिये बाहर गया, तो मैं महाज्ञान-विद्याको तुम्हें दे जाऊँगा। हरतालकी लकड़ी, जो दिनभर मेरे पास और रातको तुम्हारे पास रहती है, उसे मैं अपने साथ ले जाऊँगा।"

अलकाने कहा—"प्रभो! तो महाज्ञान-विद्या मुझे आज ही न सिखा दीजिये कलसे तो आप विदेश-यात्राकी तय्यारीमें लगगे।"

चन्द्रधर बोले—"प्रिये! एक बातके लिये सावधान किये देता हूं। महाज्ञान-विद्यामें एक विशेषता है, कि वह एक बार जिसको बता दी जाती है, फिर वह बतानेवालेको याद नहीं रहती। अगर मैं तुम्हें इस समय महाज्ञान सिखा दू, तो तुम चपलतासे किसी दूसरे व्यक्तिको इसे न सिखा देना। जब मैं परदेशसे आऊँगा, तो फिर मैं तुमसे सीख लूंगा।"

रानीने राजाकी उक्त चेतावनीको स्वीकारकर महाज्ञानको सीख लिया। महाज्ञान सिखाकर चन्द्रधर तो सो गये और अलका तकियेके नीचेसे हरतालकी लकड़ीको लेकर वहीं अदृश्य हो गयी।

* * * *

अगले दिन प्रातःकाल हो जानेपर, रानीने रोते-रोते आकर राजाको जगाया और कहा—"नाथ! आज फिर आपके बड़े बेटेको साँप काट गया है। कृपाकर जल्दीसे उठकर चलिये और उसे प्राणदान कीजिये।" राजाने आश्चर्यमें आकर कहा—"रानी! महाज्ञान-विद्या तो अब तुम्हारे ही पास है। उसका तीन बार उच्चारणकर पुत्रको जिला लो। मेरे पास अब क्या कहने आयी हो?"

रानीने उससे भी अधिक आश्चर्यमें पड़कर कहा—"नाथ!

क्या आप इस समय स्वप्न देख रहे हैं, मुझे आपने महाज्ञान-विद्या कब सिखायी थी ? मैं तो कल यहाँपर मौजूद ही न थी ! सखियोंके साथ "चन्द्रोद्यान" गयी हुई थी !"

"तब रातको अलका बनी हुई मेरे पास कौनसी स्त्री आयी थी !"—इतना कहता-कहता चन्द्रधर गहरे विचारमें पड़ गया। विचार ही विचारमें उसे मा पार्वतीका ध्यान हो आया। पार्वतीने ध्यानावस्थामें राजाको दर्शन देते हुए कहा—"चन्द्रधर ! इस बार चामुण्डा पद्माने तुम्हें गहरा छकाया है। रात तुम्हारी रानी तो सपरिवार चन्द्रोद्यान गयी थी। अकेला घर देख, पद्माने मायासे अलकाका रूप धर लिया था और वही तुमसे शिवकी दी हुई महाज्ञान-विद्या और मेरी दी हरतालकी लाठी छल ले गयी है। इस बार तुम निस्सहाय हो गये हो। अब पद्मा तुम्हें मनमाने ढङ्गसे परेशान करेगी। परन्तु सावधान ! घबरानेकी कोई बात नहीं है। तुम्हारे राज्यमें एक "शङ्करनाथ" नामका बैद्य रहता है। उसके पास विषहरी सञ्जीवनी और अमृतादि कितनी ही बूटियाँ हैं। तुम उसे किसी प्रकार राजीकर, अपने महलोंमें ले आओ और जब पद्माके नाग उपद्रव मचायें, तभी उसको सूचना दो। वह तत्काल मरे हुए आदमीको जिला देगा। इस समय वह घरपर ही है। सेवकसे उसको अभी बुला भेजो।"

पार्वती इतना कहकर अदृश्य हो गयीं। चन्द्रधरका ध्यान भङ्ग हो गया। उसने रानीसे कहा—"रानी ! भयानक धोखा खाया। रॉड़ पद्माने हमें बुरी तरहसे ठगा। तुम्हारा रूप धरकर

वही महाज्ञान-विद्या और हरतालकी लकड़ी ले गयी। पर भयकी कोई बात नहीं है। मैं अभी एक वैद्यको बुलाता हूँ, वह बातकी बातमें तुम्हारे बेटोंको जिला देगा।"

इतना कहकर चन्द्रधर राज-सभामें गया और राजदूतों द्वारा शङ्करनाथको बुला भेजा। शङ्करनाथके आ जानेपर राजा राजमहलमें आया और वहाँ वैद्यजीका यथोचित सम्मानकर उसे पद्माकी शत्रुताका सारा हाल सुनाया। शङ्करनाथने सारे समाचार जान और राज-पुत्रोंकी मृत्युका हाल सुनकर राजाको समयोचित धैर्य दिया और स्वयं उनकी चिकित्सामें लगा।

शङ्करनाथ सर्पोंका विष दूर करनेमें सचमुच कमाल करता था। उसने बातकी बातमें मरे हुए छहों राज-कुमारोंको जिला दिया। साथ ही उसने अपने विद्याबलसे राज-भवनकी चारों ओर ऐसा प्रबन्ध कर दिया, ताकि साँप उसकी सीमातक आनेका साहस न कर सकें।

तथापि सर्पोंने चन्द्रधरके बाल-बच्चोंको काटना न छोड़ा। परन्तु जितनी बार भी साँपोंने काटा, शङ्करवैद्यकी कृपासे वे सब बच गये; किसीका भी बाल बाँका न हुआ।

पद्माने देखा, इस बार भी मेरी जीत न हुई। महाज्ञान-विद्या और हरतालकी लकड़ी चुराकर भी मेरी जीत न हुई। चन्द्रधर अपने मित्र शङ्करवैद्यकी सहायतासे मेरे गण, साँपोंका सारा परिश्रम व्यर्थ करा रहा है। अब किसी तरह इस शङ्करपर हाथ सफा करना चाहिये।

यह सोच, पद्मा छद्मवेश धारणकर, शङ्करके पास गयी। भाँति-भाँतिके लालच देकर उसे अपने वशमें करनेका यत्न करने लगी। किन्तु उसकी सैकड़ों चेष्टाओंसे भी शङ्करका चन्द्रधरके प्रति अकृत्रिम-सुदृढ़ बन्धुत्व भङ्ग न हुआ। आखिर पद्माने यह निश्चय किया कि शङ्करको सुरलोक भेजनेसे ही मेरा मतलब सिद्ध होगा।

पद्माने एक चाल चली। उसने पहले शङ्करकी स्त्रीके साथ धीरे-धीरे बहिनापा जमाया, फिर एक दिन सुविधानुसार उससे शङ्करकी मृत्युका हाल जानकर बातकी बातमें उसे मार डाला।

इस प्रकार विचित्र कौशल द्वारा शङ्करका जीवन नष्ट होनेसे, पद्मा देवीका उद्देश्य सिद्ध हो गया।

चन्द्रधरने जब शङ्कर वैद्यकी मृत्युका संवाद सुना, तब वह सहसा काँप उठा। सोचा—"दुष्टा पद्माने इस बार गजबकी चालाकी की है। मेरे सभी बचावोंको नष्ट कर डाला है।" किन्तु, इतना होनेपर भी चन्द्रधर अपने निश्चयसे हताश न हुआ और "सब भगवान् भला करेंगे" कहकर अपने सङ्कल्पपर और भी दृढ़ हो गया।








चन्द्रधर अपनी विपत्तिमें अब निरवलम्ब है। महा-ज्ञान-विद्या गयी, हरतालकी करामाती लकड़ी गयी और परम सहायक, द्वितीय धन्वन्तरि, शङ्करवैद्य भी गया। अब किसके बलपर पद्मासे युद्ध किया जाये? चन्द्रधरके पास इस समय कोई भी अच्छा अवलम्ब नहीं रहा। आजकल पद्मा अजेय है। अब उसे कौन हरा सकता है? इस बार पद्मा चन्द्रधरको अपनी आपत्तियोंके शिकञ्जेमें ऐसा कसेगी, कि सौदागर बिना उसकी पूजा किये छुटकारा ही न पा सकेगा। किन्तु हाय! समय-समयपर मनुष्योंकी भांति देवता लोग भी भीषण भूल कर बैठते हैं। पद्माने दमन—अतिशय दमनका अवलम्बन करके अपने मनोरथको और भी अगम बना लिया।

पद्माने चन्द्रधरका सर्वनाश करनेके लिये फिर नागोंको हुक्म दिया। कहा—"इस बार तुम लोगोंका परिश्रम व्यर्थ न होगा। चन्द्रधरके पास अब ऐसा कोई भी उपाय नहीं रहा, जिसके जरीयेसे वह अपनी बचाव कर सके। जाओ, तुमलोग निडर होकर

अपना काम करो।" यह सुन सर्प इस बार आनन्दसे फन उठाते हुए, भीषण फूँकारें मारते, पद्माका आज्ञा-पालन करने चले।

एक दिन चन्द्रधरका बड़ा लड़का वायु-सेवनकर, साँझके समय घर लौट रहा था, सहसा उसे अपने सामने एक बड़ा भारी गोखरू साँप देख पड़ा। देखते ही प्राण उड़ गये। सावधान होते न होते साँपने पीछेसे पाँव धर लिया और काटकर भाग गया। लड़का चीख मारकर वहीं गिर पड़ा।

चीख सुनकर पासके आदमी दौड़ आये, राज-पुत्रको मरा देखकर सब चौंक उठे, पर घबराये नहीं। क्योंकि, उन्होंने अपनी आँखोंसे अनेक बार ऐसे काण्ड देखे थे। अतः यत्नके साथ मृत राज-पुत्रको गोदीमें उठाकर वे राजमहलमें ले गये। राज-कुमारके सहसा साँप द्वारा डसे जानेकी खबर सुनकर, महलोंकी स्त्रियां शीघ्रतासे उसके पास आयीं और मृतशरीरको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं। राज-रानी अलकाने आँखोंमें आँसू भर, बेटेका सिर गोदमें रखा और नौकरोंको आज्ञा दी, कि वे राजाको बुला लायें। क्योंकि सबको यही भरोसा था, कि राजाके आते ही लड़का जी उठेगा। वे आते ही किसी उपायसे पुत्रका सारा ज़हर उतार देंगे। न मालूम क्यों, जैसे ही दूत राज-सभाकी ओर चला, वैसेही अलकाका कलेजा मुँहको आने लगा, दायीं आँख फड़कने लगी, अपने आपही आँखोंमें आँसू भरने लगे। किन्तु अलकाने मनको कड़ाकर इन दुर्लक्षणों-की ओर तनिक भी ध्यान न दिया।

यथासमय राजाके पास ख़बर पहुँच गयी, पर इस बार राजा पहलेकी भाँति तत्काल घटना-स्थलपर न आये। राज-पुत्रकी मृत्युका संवाद सुनते ही उनके शान्त मुखपर हठात् भ्रूकुटीके चिह्न प्रस्फुटित हो उठे। उन्होंने मुँह नीचाकर, उदास भावसे हुक्म दिया "इस बार पन्ना जीत गयी। जाओ, गंगाके किनारे लाश ले जाकर अन्त्येष्टि क्रियाएं कर दो और भग-वान् विश्वनाथकी जय बोलो।"

दूतने अलकाके पास जाकर राजाकी बात दोहरा दी। सुनते ही अलका सब समझ गयी। समझकर उससे और स्थिर न रहा गया। वह रोते-रोते मूर्च्छित हो गयी। महलके अन्यान्य व्यक्ति भी अब असल बात समझ गये। उन्होंने भी व्याकुलताके साथ रोना आरम्भ कर दिया। सारांश यह, कि उस समय चम्पक नगरके राजमहलोंमें रुदनकी ऐसी घटा उठी, जिससे सारा आकाश भर गया। उस घोर रुदनके बीचमें ही राज-पुत्रकी लाश गंगा-तटपर पहुँचायी गयी और रुदनके साथ ही साथ उसकी चिता "विश्वनाथकी जय" के विकट कोलाहलके साथ जल उठी।

सब लोग बड़े कुमारकी दाह-क्रिया समाप्तकर घर आये पर आते न आते यह क्या? यहाँ तो फिर वही काण्ड! फिर वही दृश्य! इस बार मँझले कुमार साँपसे डसे जाकर बेहोश पड़े मुँहसे भाग फेंक रहे हैं। शान्त हुआ रुदन-वेग फिर पूर्वावस्था-पर पहुँच गया और मँझले कुमारकी भी अन्तमें वही दशा हुई, जो बड़े कुमारकी हुई थी।

इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं; एक-एक करके छहों राज-कुमार साँपके शिकार बनकर बेमौत मर गये। उन दिनों एक शोककी आग भलीभाँति बुझते न बुझते फिर दूसरे शोककी आग जल उठती थी। शोकके ऊपर शोक—शोक ही शोकमें, मानों शोकोंका तूफान आ गया था।

किन्तु इस प्रकार निरन्तर शोकके पहाड़ टूटनेपर भी, चन्द्रधर सदा उदास, गम्भीर और विकार-शून्य रहा। जैसे-जैसे उसके पुत्र मरते गये, वैसे ही वैसे वह उत्तरोत्तर दृढ़ और निष्ठुर होता जाता था। पुत्रोंके शोकमें सभी रोये-पीटे; पर चन्द्रधरके नेत्रोंमें किसीने दो आँसू भी नहीं देखे। देखनेवाले चन्द्रधरकी इस दशाको देखकर अवाक् रह गये।

किन्तु पाठक! चन्द्रधरके अन्तःपुरकी तो दशा देखिये। वहाँ कैसा भयानक दृश्य देख पड़ रहा है। महारानी अलकाकी ओर अब नजर भरकर देखा भी नहीं जाता। वह पुत्रोंके शोकसे एकदम पगली हो गयी है। कभी छाती पीटती है, कभी बाल नोचती है, कभी सिर पीटती है और जो जीमें आता है, सो निरन्तर बकती रहती है। उसके आर्त्तनाद सुननेवालोंकी छातियाँ फटती हैं। राजभवन मारे चीखके काँप उठता है। रह रहकर विधवा वधुओंका शोक-प्रवाह शोक-सलिलाका रूप धारण कर लेता है। उनकी दशाको देखकर पशु-पक्षियोंकी भी आँखें भर आती हैं। उनके विलापोंको सुनकर पत्थर भी फटे जाते हैं। इन कई एक दिनोंमें सास और बहुएँ पुत्र और पतियोंके शोकसे

ऐसी कृश हो गयी हैं; कि देखनेवालोंको वे मृतक-कङ्कालसी ही दृष्टिगोचर होती हैं, उनके शरीरका सारा सौन्दर्य्य नष्ट हो गया है। जैसे छायामूर्त्तिको वास्तविक शरीर नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार उनके शरीर भी केवल नाममात्रके शरीर रह गये हैं। सारांश यह, कि उन दिनों राजभवन एक प्रकारसे मानव-शून्य छाया-मूर्त्तियोंका निवास स्थानसा प्रतीत होता था।

चन्द्रधर, अलका और पुत्रवधुओंकी उक्त अवस्थाको रोज देखता था और उसको अच्छी तरहसे अनुभव करता था; किन्तु इतनेपर भी वह पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह धीर, अटल और गम्भीर बना हुआ था। शोकका वायु जितने जोरसे बहता था, चन्द्रधर भी मानों उतना ही गम्भीर, उतना ही उदास और उतना ही दृढ़ होता जाता था।

अलका रात-दिन केवल यही सोचा करती, कि इस सर्व-नाशके मूल कारण स्वयं महाराज हैं। उन्होंने पद्माके साथ दुश्मनी करके बैठे-बिठाये आपत्ति मोल ली है। यदि वे अब भी सीधे रास्तेपर आ जायें—अब भी पद्माकी पूजाकर उसे प्रसन्न कर लें, तो फिर सारा परिवार जैसाका तैसा हो जा सकता है। फिर छहों पुत्रोंसे माताकी गोद भर जायेगी और बधुओंका सौभाग्य हरा हो जायेगा। किन्तु हाय! सती-साध्वी, स्वामीके असन्तुष्ट हो जानेके भयसे, उस बातको एक बार भी जीभपर लानेका साहस नहीं करती। दारुण दुःख और तीव्र-तर शोकके भारसे हृदय बेतरह दबा रहनेपर भी वह प्राण-पणसे

स्वामीकी सेवा करती। जब वह भार नितान्त असह्य हो उठता, लाख चेष्टा करके भी छिपाये नहीं छिपता—तब वह सबकी आँखें बचाकर नितान्त एकान्तमें जा, एक लम्बा श्वास छोड़ती और आँखोंमें उमड़े हुए आसुँओंको पोंछ डालती थी। इससे उसकी छातीका भार बहुत कुछ हलका हो जाता था।

चन्द्रधर इन बातोंका पता रखता था एवं कभी कभी इस दृश्यको, छिपकर अपनी आँखोंसे भी देख लेता था, किन्तु इतनेपर भी इन सब करुण-काण्डोंका उसके हृदयपर असर नहीं होता। हाँ, एकाएक अलकाके दीर्घ श्वासका शब्द कानमें पड़ जानेपर हृदयमें एक प्रकारकी तीव्रताकी अनुभूति होती थी; किन्तु इसी समय महादेव और पार्वतीका स्मरणकर वह फिर सम्हल जाता था; एवं आकाशकी ओर हाथ उठाकर पगलोंकी भाँति भाँतिके कटु-वचन कहने लगता था।

चन्द्रधर शङ्कर-भवानीका एकनिष्ठ भक्त था, तिसपर उसके हृदयमें भगवान् शिवका अतुल और अलौकिक तेज भरा था, उसे सांसारिक शोक और क्षोभ कातर नहीं कर सकते थे। वह हज़ार आपत्तियाँ आ पड़नेपर भी विचलित होनेवाला नहीं था। इतनेपर भी वह जिस समय, राज-महलोंसे विधवा बहुओं-का छाती फाड़नेवाला रुदन सुनता, चकितोंकी भाँति, सौभाग्य चिह्न-शून्य और शोभा-हीन मुखोंको देखता, तब उससे एकाएक स्थिर नहीं रहा जाता था। उस समय ऐसा मालूम होता, मानों कोई बड़ी निर्दयताके साथ उसकी छातीके हाड़ोंको खींचता हो!

नेत्रोंसे मानों सात सागरोंका जल उथल उठना चाहता हो। किन्तु हृदयमें इस प्रकारकी निर्बलता आते ही चन्द्रधर चण्डी-मन्दिरमें चला जाता और "जो मा चण्डी करगी, वही होगा।" कहकर सारी दुर्बलताओंको दूरकर मनको पक्का कर लेता था।

किन्तु इतना होनेपर भी, क्षणभरके लिये भी, उसके हृदयमें पद्माकी बात पैदा नहीं होती थी; जितना ही शोक-दुःखका वेग हृदयको कातर करनेकी चेष्टा करता, अशान्तिकी वायु जितने ज़ोरसे ही बहती, अलका और बहुओंका विलाप जितना ही सांघातिक होता जाता, चन्द्रधर उतने हो साहसके साथ, असीम बलसे अपने हृदयको मजबूत बनाता जाता। मनको उतना ही अधिक दृढ़ करता जाता एवं उतना ही अपने निश्चयोंको पक्का करता हुआ शिव-शक्तिके चरणोंमें आत्मसमर्पण-कर शोक और दुःखको जीत लेता था। साथ ही उसके हृदयमें पद्माके प्रति पहलेकी अपेक्षा अधिक घृणा, अधिक विरक्ति और अधिक शत्रुताका भाव स्थायी होता जाता था; इसीलिये पद्मा उक्त सारे काण्ड करके भी चन्द्रधरको अपने वशमें नहीं कर सकी। यही है दमनका अवश्यम्भावी परिणाम।

मनुष्यकी शक्ति, मनुष्यकी प्रतिज्ञा और मनुष्यके हृदयका बल देखकर पद्मा आश्चर्यसे भर गयी। यदि ऐसे महात्मापुरुष-से पूजा प्राप्त न की, तो उसका फिर गौरव ही कौन करेगा? धुनियाँ-चमारोंसे पूजा पाकर तो प्रतिष्ठा मिलनी दुश्वार है। मान और प्रतिष्ठाकी वृद्धि बड़ोंकी पूजा पाकर ही होती है। अतः जिस

तरह हो, चन्द्रधरसे पूजा पानी ही होगी। किन्तु किस उपायसे पूजा पानी होगी, इसके लिये पद्मा बड़ी परेशानीमें पड़ जाती और लाख सोचनेपर भी कोई उपाय न पाती थी।

पद्माकी जान-पहचान या पड़ोसके नाते कहिये, एक सखी थी। उसका नाम था नेत्री। नेत्री स्वर्गके देवी-देवताओंके कपड़े धोया करती थी। काम उसका जरूर छोटा था, तथापि थी तो वह स्वर्गकी देवी ही; अतः उसमें बुद्धि, विचार, क्षमता और बल, सामर्थ्य खूब थे।

पद्मा बहुत कुछ सोच-विचारकर एक बार उसीके पास गयी और चन्द्रधरकी सारी कथा सुनाकर नेत्रीसे उसने अपनी मनोरथ-सिद्धिमें सहायता माँगी—हितकारक सलाहें पूछीं।

नेत्रीने सब सुनकर उत्तरमें कहा—"सुना है, स्वर्गके विद्याधर अनिरुद्ध और विद्याधरी ऊषा संसारमें अवतार धारण करनेवाले हैं, देवराजके पास जाकर तुम उन दोनोंको माँग लाओ और चन्द्रधरके पुत्र और पुत्र-बधू बननेका उनसे अनुरोध करो। उन्हींके द्वारा तुम्हारी पूजाका प्रचार होगा अन्यथा तुम्हारी पूजाका प्रचार होना कठिन बात है।

नेत्रीके परामर्शके अनुसार पद्मा देवराज इन्द्रके पास गयी और उन्हें भी चन्द्रधरकी सारी कथा तथा देव-कन्या नेत्रीकी सलाहका हाल सुनाकर ऊषा और अनिरुद्ध नामक विद्याधर-दम्पत्तिको माँगा। देवराजने इस देव-कार्य्यके लिये केवल १५ सालको उन्हें मर्त्यमें भेज दिया।





चन्द्रधरके घरकी शोकमयी दशा अभी तद्वत् बनी हुई है। अलकाके नेत्रोंके आँसू अभी नहीं सूखे हैं। तरुण-वयस्का छहों विधवा बहुओंका रोना भी अभीतक नहीं थमा है। यहाँतक कि, घरके नौकर-चाकर, सगे-सम्बन्धी दिन-भर एक हाथसे नेत्रोंके आँसू पोंछते हैं और एक हाथसे अपने आवश्यक कार्यों को ज्यों-त्यों पूरा करते हैं।

इस प्रकार निरानन्द-गृहमें उन दिनों जीवन व्यतीत करना चन्द्रधरके लिये असह्य हो रहा था। उस घरकी अविरल अश्रु-धारा और हाहाकारोंसे उस सौदागरका चित्त चञ्चल हो उठा। वह अब अपने मित्रों और अन्तरङ्ग आत्मीयोंसे दूर रहने लगा।

एक दिन हृदयकी निरन्तर जलनेवाली ज्वालाको शान्त करनेके लिये चन्द्रधरने विदेश-यात्रा करनेका निश्चय किया।

चन्द्रधरके पास चौदह बड़ी-बड़ी सुन्दर नावें थीं। वे देखनेमें ऐसी मालूम होती थीं, मानों उनमेंसे प्रत्येक एक एक गाँव है। चन्द्रधर उन्हींमें अपनी व्यापारिक वस्तुओंको लादकर व्यापार करने जाया करता था। उनमें "मधुकर" नामकी नौका

सबसे अधिक बड़ी और अनेक प्रकारकी कारीगरियोंसे सजी हुई थी। दूरसे देखनेपर वह ऐसी मालूम होती, मानों जलपर बहनेवाला एक अति विशाल राजमहल है। सारांश यह, कि अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण ही, उसकी प्रशंसा दूर-दूरके आदमी किया करते थे।

चन्द्रधरने स्थिर किया, कि इस बार व्यापारके लिये दक्षिणके प्रसिद्ध नगर 'पाटण'में जाना चाहिये। क्योंकि सुना जाता है, कि पाटणमें बड़े-बड़े धनिक और शौकीन आदमी रहते हैं। वहाँ यद्यपि बढ़िया-बढ़िया वस्तुओंकी खूब खपत है, तथापि एक कारणसे वहाँ आजतक कोई भी व्यापारी व्यापार करने नहीं गया था। कारण यह था, कि पाटण देशमें रत्न लोग रहा करते थे। वे यद्यपि बड़े भारी अमीर और रुचि-प्रिय होते थे, तथापि वहाँ-जाकर व्यापार करना ज़रा टेढ़ी खीर थी। वहाँका मार्ग भी भयंकर आपत्तियोंसे भरा हुआ था। दुर्गम महासागरमें सदा ही भयानक बाढ़ और भीषण तूफानोंके दौरे-दौरे रहा करते थे। वहाँ एक बार नौका पहुँच जानी चाहिये, फिर तो उसका सातों पाताल ढूंढ डालनेपर भी आसानीसे पता लगना दुश्वार था। इसके सिवा उस महासमुद्रमें 'कालीदह' नामक एक बड़ा विकट उपसागर है, उसके जलकी गहराईका कुछ ठिकाना नहीं। सूरत भी बड़ी भयानक है—सारा पानी घोर अन्धकारकी भाँति काला है। वहाँ बिना तूफानके ही निरन्तर पर्वतके समान ऊँची तरंगें उठा करती हैं। उस समय साधा-

रण व्यापारी लोग तो कालीदहका नाम सुनते ही भयसे काँप उठते थे। तिसपर कालीदहके मध्य-भागमें पद्माका एक निवास स्थान था। इतनी भयानक आपत्तियोंके होते हुए भी चन्द्रधरने स्थिर किया, कि इस बार जिस प्रकार भी हो, दक्षिण-पाटणमें ही व्यापार करने जाना चाहिये।

चम्पक नगरमें बहनेवाली 'गुञ्जरी' नदीके "चाँद-पाल" घाट-पर, सौदागरकी उक्त चौदहों नावें आकर लगीं। नावोंके आते ही लोगोंने उनपर व्यापारी माल लादे। सौदागरके व्यापारके लिये विदेश जानेकी बात नगर भरमें फैल गयी। झुण्डके झुण्ड प्रजाके लोग राजाकी मधुकर नावको देखनेके लिये गुञ्जरीके किनारोंपर जमा होने लगे।

सारा सामान दुरुस्त और सब प्रकारके प्रबन्ध ठीक हो जानेपर एक नामी ज्योतिषीने प्रस्थानका मुहूर्त्त निश्चित किया। यात्राके दिन निश्चित मुहूर्त्तमें शङ्कर-भवानीका स्मरणकर, चन्द्रधरने अपने नौकरोंके साथ वाणिज्यके लिये पाटणकी ओर प्रस्थान कर दिया।



प्राण-संकट



चन्द्रधरकी चौदहों नाव मुक्त वायुमें, बड़े-बड़े पालोंको उड़ाती हुई, राज-हंसोंकी भाँति छाती फुलाती हुई, हिलती-डुलती विचित्र ढङ्गसे नाचती हुई, महासागरके विशाल वक्षस्थलपर आ रही हैं। चारों ओर नील जलवाले सागरकी शोभा नेत्रोंको अपूर्व शान्ति दे रही है। देखनेमें ऊपरका आकाश बहुत दूरपर, नीचे चलकर मानों नील-सागरके गलेसे लिपट गया है। चन्द्रधर इस विचित्र शोभा-सुखका तल्लीनताके साथ उपभोग कर रहा है। संसारके आश्चर्यप्रद परिवर्त्तन, कालकी हैरत-भरी चाल और परिवारकी चिन्तायें इस समय उससे एकदम दूर थीं।

क्रमशः चन्द्रधरकी चौदहों नावें जब कालीदहमें पहुँचीं, तब तरङ्गोंसे टकराकर उनके नाचनेका वह विचित्र भाव और भी विचित्रतम हो उठा। दूरपर-मध्य सागरमें—पद्माका श्वेत मन्दिर मानों नील-सागरका पेट फोड़कर, ऊँचा सिर किये, पद्माकी अवाध्यता सागरके "हहहड़" नादके साथ घोषणा कर रहा था। उसे देखते ही चन्द्रधरने घृणासे मुँह फेर लिया।

नौकरोंको भवानीकी कीर्त्तिका गान करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सेवकगण भवानीका महिमा-कीर्त्तन करने लगे और उस कीर्त्तनके साथ चन्द्रधर मन्दिरकी ओर घूसा उठा, पद्मापर विरक्ति दिखाता हुआ आगे बढ़ने लगा।

यथासमय चन्द्रधरकी चौदहों नावें दक्षिण पाटणमें जा पहुँचीं। पाटणमें व्यापारकर सौदागरको वास्तवमें अभूतपूर्व लाभ हुआ और इतना लाभ हुआ, कि जीवनभर वाणिज्य करके भी शायद उसे इतना लाभ न होता। सुपारी, इलायची आदि इस देशकी सामान्य-सामान्य वस्तुओंके बदलेमें भारी-भारी धन-रत्न—सोना, मणि-मुक्ताओंसे चौदहों नावें भर गयीं। जब सारा माल बिक गया और लाभसे चन्द्रधरके ऊपर लक्ष्मीकी भारी वर्षा हो चुकी, तब उसने फिर स्वदेश लौटनेकी ठहरायी।

जिस दिन चन्द्रधर स्वदेशको लौटा, उस दिन आकाश खूब साफ था। आसमानमें ढूँढ़नेपर भी मेघके दर्शन नहीं होते थे। अतएव सारा पथ यथेष्ट सुख-स्वच्छन्दताके साथ व्यतीत हो गया। कालीदहमें आकर चौदहों नावें पहलेकी भाँति ही नाचती हुई जाने लगीं। किन्तु पद्माके मन्दिरके पास पहुँचते न पहुँचते सारा शान्त भाव भीषण रूपसे अशान्तिमें बदल गया।

बहुत देरसे, सुदूर पश्चिमकी ओर आकाशमें एक काले धब्बेकी तरह अति तुच्छ मेघ देख पड़ रहा था। मन्दिरके पास पहुँचनेपर देखा गया, कि वह सहसा सुरसाकी तरह बेतरह बढ़ गया है। थोड़ीही देरमें सबके देखते-देखते सारा आकाश भीषण-

काय काले मेघोंसे भर गया। आकाशके सारे शरीरमें मानों किसीने जादूसे स्याही पोत दी। उसकी आभासे कालीदहका सारा कृष्णजल और भी काला हो गया। देखते ही भयसे प्राण काँप उठते थे। अन्धकार—घने रौरव अन्धकारने—आकाश और समुद्रको, अपने काले आवरणसे ढककर एकाकार बना दिया है। साथ ही साँय-साँयका भीषण शोर करता हुआ तूफान भी आ पहुँचा। मेघ और तूफानके साथ समान युद्ध करनेके अभिप्रायसे कालीदहने भी मानों क्रोधसे फूल-फूलकर गरजना आरम्भ कर दिया। तूफान और कालीदहमें लड़ाई छिड़ गयी। वहाँ एक तो स्वभावसे ही हरदम पहाड़सी तरंगें उठा करती थीं, इसपर इस तूफानके युद्धमें तरंगोंका रूप और भी भयानक हो उठा। लहरके बाद लहर और तरंगके ऊपर तरंग—सारे तरंगोंके आकाश छिप गया। इसके अलावे विकट गर्जन—गर्जन भी सामान्य नहीं, सैकड़ों धौंसोंका घोष भी उस गर्जनके आगे तुच्छ था। सारांश यह, कि जैसा विकट अन्धकार था, वैसी ही विकट तरंगें उठ रही थीं और तरंगोंसे भी विकट समुद्रमें गर्जना हो रही थी। मानों उस समय पृथ्वी और आकाश—सर्वत्र इन तीनोंका ही साम्राज्य फैला हुआ था। चौथी वस्तु नामको भी नहीं देख पड़ती थी।

अन्धकारसे दृष्टि-शक्ति बेकार हो गयी, गर्जनासे कान बहरे हो चले; इन दोनोंसे भी भीषण वों-वों-सों-सों शब्द करनेवाले तूफानके झपाटे, वर्षाकी उपलवृष्टि, बिजलीकी चकाचौंध,

तरंगोंके आघात, इन सबने क्षणभरमें ही महाप्रलय उपस्थित कर दिया।

चन्द्रधरकी चौदहों नावोंको खेनेवाले माझी और मल्लाह अवतक बड़ी प्रसन्नताके साथ रसिया गाते हुए जा रहे थे। नौकरों-चाकरोंमेंसे भी कोई चौसर खेल रहा था, कोई गप्पें मार रहा था और कोई रसरंगमें मतवाला हो रहा था। इस महाप्रलयके सहसा सिरपर टूट पड़नेकी किसीने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। इस समय आकाश और समुद्रकी अवस्था देखकर सभीका मुख सूख गया, छाती काँप उठी, प्राण मारे भयके अस्थिर हो उठे। जिस स्थानपर कुछ देर पहले आमोदकी लहरें उठ रही थीं, वहींपर हृदय-भेदी रुदनका हाहाकार उठ खड़ा हुआ।

"सम्हलो-सम्हलो" कहते कहते मल्लाह लोग प्राणपणसे नावोंको बचानेकी चेष्टा करने लगे। चन्द्रधर यहाँतक राजी था, कि यदि नावोंपरसे माल असवावका बोझा समुद्रमें फेंक देनेसे भी नावोंकी रक्षा हो सके, तो धन-रत्नका मोह मत करो, किन्तु हाय! प्रचण्ड तूफानके बीचमें, प्रकाण्ड महासागरके वक्ष-स्थलपर, तरंगोंकी बाढ़के भीतर तुच्छ नारियलके खोलकी भाँति चौदह नावें कितनी देरतक अपनी रक्षा कर सकती थीं!

साक्षात् मृत्युकी कराल छाया, अपना विकट मुख फैलाकर मानों दशों दिशाओंको निगल जानेकी तैयारी करने लगी। यह देखकर भी चन्द्रधर अचल-अटल स्थिर और गम्भीर बना

रहा। नावोंपरके प्रायः सभी लोग चिल्ला रहे थे, किन्तु सौदागरके मुखपर भयका तनिक भी चिह्न नहीं था—चिन्ताकी एक भी रेखा नहीं थी। वह निश्चिन्त मनसे चण्डीका स्मरण करता हुआ, मानों मृत्युके सादर आलिङ्गनकी अपेक्षा कर रहा था।

चौदहों नावोंपर भीषण हाहाकार मच रहा था। प्रचण्ड तरंगोंके समूहने नावोंको गोलोंकी भाँति उछालते-कुदाते उलटना शुरू कर दिया-"डूबी-डूबी"-"गयी-गयी" के साथही साथ मुहूर्त्तभरमें सारा काण्ड शेष हो गया!

देखते-देखते धन-रत्न, नौकर-चाकर, माझी-मल्लाह सबके साथ चौदहों नावें कालीदहके प्रबल जलमें डूब गयीं। उनका नाममात्रको भी चिह्न न रहा। केवल अकेला चन्द्रधर सौदागर नावके एक तख्तेको पकड़ डुबकियाँ खाता हुआ इधर-उधर बहने लगा।

थोड़ी ही देर बाद, तरङ्गोंके चपेटे खाकर चन्द्रधर बेहोश हो गया। उसके सारे अङ्ग—हाथ-पाँव—जड़ हो गये; माथा भन्ना उठा, आंखोंकी दृष्टि-शक्ति जाती रही, शुद्धि लुप्त हो गयी, ऐसा मालूम होने लगा, मानों घोर निद्राके वेगमें कोई स्वप्न दिखायी दे रहा हो।

सहसा मारे ठण्ढके हृदयका मर्मस्थल थर-थर काँप उठा। साथ ही साथ निद्राकी छलना भी नष्ट हो गयी। ज्ञान लौट आया। सौदागरने आँखें मलकर देखा।

यह क्या! यह तो विकट अतट समुद्र है! जिस ओर दृष्टि

जाती है,—नाव नहीं, सीमा नहीं—केवल कानोंके पर्दे फाड़नेवाली अनन्त जल-राशि, अनन्त अशान्त लहरोंको छातीपर धारणकर अनन्त नील आकाशके साथ मिल गयी है।

उस समय सौदागरके मनमें एक-एक करके सारी बातें स्मरण होने लगीं। उसकी चौदह नावों और मधुकरमें अगाध धनरत्न लदा हुआ था, कितने ही बन्धु-बान्धव, नौकर-चाकर, लोग-लश्कर और नाभी-मल्लाह साथ थे; वे सब इस समय कहाँ हैं? मानों स्वप्नके खेलकी तरह, पलक मारते-मारते वे सब इसी अतट और अथाह समुद्रमें डूब गये। एक शब्दमें चन्द्रधरका सर्वस्व नष्ट हो गया। किन्तु आत्म-विजयी सौदागर उसके लिये तनिक भी कातर न हुआ। उसे केवल थोड़ासा आश्चर्य हुआ, कि ऐसी आपत्ति—ऐसे महाप्रलय और ऐसी अघटन घटनाओंमें वह अकेला कैसे जीवित रहा।

मन ही मन भक्तिभावसे चण्डीका स्मरणकर, शिव-पार्वतीके चरणोंमें आत्मसमर्पणकर सौदागर किनारेपर पहुँचनेके लिये प्राण-प्रणसे कोशिश करने लगा; किन्तु हाय! उस अतट समुद्रमें अशान्त लहरोंके राज्यमें—उसकी सभी चेष्टाएँ व्यर्थ हो गयीं। चाहे जैसा बलवान् व्यक्ति क्यों न हो, चाहे जैसा शक्तिशाली आदमी क्यों न हो, प्रकृतिके साथ युद्धमें वह किसी प्रकार भी, और कभी भी विजय नहीं पा सकता। क्रमशः सारा बल क्षीण होने लगा; शरीर शिथिल हो चला, श्वास-प्रश्वासकी गति मन्द पड़ गयी, आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया। जीनेकी आशा



पद्माका आविर्भाव।

"सौदागर! देख रहे हो, मेरे कोपके पात्र बनकर तुम्हें कितने कष्ट उठाने पड़े हैं?

प्रेस, कलकत्ता] [देखिये—पृष्ठ संख्या [illegible]

छोड़कर उसने फिर शिव-पार्वतीका स्मरण किया। उस समय उसकी दृष्टिके सामने—जीवनकी उस अन्तिम घड़ीमें—एक आश्चर्यमय दृश्य प्रकट हुआ!

जिस स्थानपर घोर अन्धकारमय आकाशके साथ अन्धकार-पूर्ण सागरका संगम होता था, वहींपर सहसा अपूर्व प्रकाशका प्रादुर्भाव हुआ। वह प्रकाश आगका नहीं था, सूर्य, चन्द्र और ताराओंका भी नहीं था; तथापि वडा ही कोमल, बड़ा ही स्निग्ध और बड़ा ही मधुर था; मानों स्वर्गीय राज्यकी किसी अपरूप रूपकी छटा छिटककर प्रकाश कर रही थी।

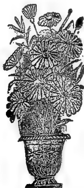
उस प्रकाशके मध्य-भागमें एक साँपोंके अपूर्व सिंहासनपर समस्त शरीरमें साँपोंके ही गहने पहने, अपनी दिव्य ज्योतिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली एक अतीव रूपवती देवी बैठी हुई थी। देवी मृदु-मधुर हास्यसे हँसती हुई, चन्द्रधर-की ओर देख, उसे अभय-प्रदान पूर्वक बोली—"सौदागर! देख रहे हो, मेरे कोपके पात्र बनकर तुम्हें कितने कष्ट उठाने पड़े हैं? खैर, यदि अब भी अपने कल्याणकी इच्छा है, तो इस संसारमें मेरी पूजाका प्रचार कर दो; मैं तुम्हारी सारी आपत्तियाँ दूर कर दूँगी, धन-रत्न, लोग-लश्कर सबका पूर्ववत् उद्धार कर दूँगी। साथ ही ऐसा सौभाग्यशाली बना दूँगी, कि तुम्हें देखकर देवता भी ईर्षा करने लगेंगे। तुमसे मैं सांगोप पूजा पानेकी कामना नहीं करती; केवल इसी जलराशिमेंसे, एक अंजुलि जल लेकर मेरे उद्देश्यसे छोड़ दो।"

चन्द्रधर समझ गया। देवी और कोई नहीं उसकी माँकी और उसकी शत्रु वही चामुण्डा पद्मा है। पहचानते ही सौदागरने दारुण घृणासे मुख फेर लिया, घूसा उठाकर उसपर अपना क्रोध प्रकाशित किया। किन्तु उस समय देवी अदृश्य हो गयी थी; प्रकाश जाता रहा था, अन्धकार और तरङ्गोंसे जल और स्थल सब एकाकार हो रहे थे।

उस तूफानमें, महासागरके वक्षस्थलपर, मनुष्योंको प्राण बचाना मुश्किल था। पद्माने सोचा इस उद्धत सौदागरको इसकी अशिष्टताका पूरा दण्ड देना चाहिये। और दण्डमें मार डालना ही श्रेष्ठ होगा। किन्तु उसी समय याद आया कि शिवका वचन मिथ्या न होगा। उन्होंने कहा है, चन्द्रधरके बिना जीवित रहे, संसारमें उसकी पूजाका प्रचार न होगा। इसलिये उसे जीवित ही रखना चाहिये। यह सोचकर पद्माने उसके बैठने लायक सुविस्तृत, पत्रयुक्त सौ पँखड़ियोंवाला एक कमल सौदागरके आगे फेंक दिया, जिसपर बैठकर वह आसानीसे किनारेतक आ जाये। जिस समय आदमी डूबने लगता है, उस समय सहारेके लिये एक सामान्यसा तिनका भी पाकर, प्राणोंकी मायासे उसीके द्वारा किनारेतक पहुँचनेकी चेष्टा करने लगता है। सामने बहते हुए, पत्तों सहित कमल पुष्पको देख, चन्द्रधरने सहारा लेनेके लिये हाथ फैलाया, किन्तु उसकी शत्रु देवीका नाम पद्मा था, कमलका भी दूसरा नाम पद्म ही है। इस नाम-सादृश्यके सहसा याद आते ही उसने घृणासे अपना हाथ खींच

लिया और अतट समुद्रराशिमें डूब मरनेके लिये तय्यार हो गया।

ऐसे समयमें भी—ऐसी विकट अवस्थामें भी—शिव-तेजसे बलवान् चन्द्रधरके मनका बल देखकर पद्मा अवाक् हो रही। मन ही मन उसकी प्रशंसा की। साथ ही उसकी इच्छा चन्द्रधरसे पूजा पानेकी लिये और भी बलवती हो उठी। अतः तरङ्ग और लहरोंके झपाटोंसे सौदागरको उसने किनारे पहुँचा दिया।



विकट-लाञ्छना

१०

जैसे.तैसे प्राण बचाकर चन्द्रधर तीन दिन बाद, एक नामी कस्बेके पास पहुँचा। वहाँ नंगे शरीरको ढकनेके लिये वणिकराजने श्मशानसे कफनका टुकड़ा संग्रहकर, किसी तरह लज्जा निवारण की। फिर उस कस्बेमें प्रवेश किया।

इस समय चन्द्रधरकी दशा बड़ी ही विचित्र थी। उसके पैर मारे कमजोरीके मतवालोंकी भाँति पड़ रहे थे। शरीरमें तनिक भी बल नहीं था; मुँह सूखा हुआ; आँखें भीतर धसी हुईं और बालोंमें सेरों रेत भरा हुआ था। तरंगोंके साथ युद्ध करनेसे उसकी समस्त शक्तियाँ शिथिल पड़ गयी थीं। नाड़ी और मांस-पेशियोंके तार-तार अलग हो गये थे। इसके ऊपर था—भूखका अत्याचार। उस समय क्षुधाके मारे पेटमें मानों भीषण ज्वाला उठी थी—सारा शरीर झनझना रहा था। बीच बीचमें जब कभी भगवती पार्वतीका स्मरण आ जानेसे मनमें साहस-का उद्रेक हो जाता था, तभी दश-पाँच कदम आगेकी ओर उठ जाते थे। चम्पक नगरका राजा, फिर कुबेरकी भाँति धनवान्



चन्द्रधरकी लाञ्छना।

यहां नंगे शरीरको ढकनेके लिये श्मशानसे कफनका टुकड़ा संग्रहकर,
लज्जा-निवारण किया।

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता] [देखिये—पृष्ठ संख्या ७४

सौदागर आज पथके भिखारियोंसे भी गया बीता हो रहा है, आज एक मुट्ठी अन्नके बिना उसके प्राण जा रहे हैं।

ऊपर जिस कस्बेका उल्लेख किया गया है, और जिसमें अभी चन्द्रधरने प्रवेश किया है, उसमें उसका एक मित्र रहता था, नाम चन्द्रकेतु सौदागर था। अपने इस दुःसमयमें, तीन दिन एकदम अनाहार बिताकर चन्द्रधर, मित्र चन्द्रकेतुके घर उपस्थित हुआ।

इस फटे हालसे भीतर जाते उसे संकोच हुआ। इसलिये सोचा, कि यदि स्वयं चन्द्रकेतु दरवाजेपर मिल जायेगा, तो अधिक कहने सुननेकी जरूरत न पड़ेगी। इतनेमें ही, जहाँ चन्द्रधर कोनेसे सटा खड़ा था, एक दरबान आ पहुँचा। चन्द्रधरने उसीको अपना नाम बताकर चन्द्रकेतुके पास भेजा।

चन्द्रकेतु दरवानके मुखसे चन्द्रधरके आनेका संवाद सुन, तत्काल बाहर आया और प्रेम तथा आदरके साथ भीतर ले गया।

आज बहुत दिनों बाद दोनों मित्रोंकी मुलाकात हुई थी। चन्द्रधरकी अवस्था देख चन्द्रकेतु बड़ा ही कातर हुआ; सारी कथा सुनकर उसने बेहद दुःख माना; किन्तु यथेष्ट आदर-सत्कार प्रदान पूर्वक उसको आश्वासन भी दिया। चन्द्रकेतुके यत्नसे चन्द्रधर, हजामत वगैरहके बाद, तेल फुलेलादि सुगन्ध द्रव्य और उबटनके साथ स्नान कराया गया। पहननेके लिये सुन्दर वस्त्र दिये गये। वेश बदलते ही चन्द्रधरकी पूर्वकी सारी शोभा लौट आयी।

उक्त सारे उपचारोंकी समाप्ति हो जानेपर चन्द्रधरने मित्र चन्द्रकेतुसे कहा,—"बन्धो ! कई दिनसे इस मुँहमें अन्नका एक दाना भी नहीं गया है—भूखके मारे प्राण निकले जाते हैं—पहले मेरे लिये खानेका प्रवन्ध करो। अन्यथा मैं तुम्हारे साथ अब एक बात भी न कह सकूँगा।"

चन्द्रकेतु अति शीघ्र भोजनका प्रबन्धकर अपने परम बन्धु चन्द्रधरको महलोंमें, भोजन कराने ले गया।

राज्य-भोग तो दूर रहे, हम पीछे कई बार कह आये हैं, कि इन दिनों चन्द्रधरको मुट्ठीभर अन्न भी मुअस्सिर नहीं हुआ था। मारे भूखके कलेजा मुँहको आ रहा था। आज सामने भाँति-भाँतिके भोजन देखकर उसे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। शीघ्रतासे आचमनकर और थोड़ासा अन्न इष्ट-देवताको निवेदितकर, वह अब खानेके लिये तय्यार हुआ।

अभी पहला ही ग्रास उठाया था, कि इसी समय महलोंमें आरतीके शङ्ख-घण्टे बज उठे। साथ ही साथ "जय पद्मा देवी"की यह शब्द भी सुनायी दिया। चन्द्रधर ग्रास मुँहमें दे रहा था, कि तुरत थालीमें रख दिया। हाथ समेटकर मित्रसे पूछा—"क्या भीतर ठाकुर-पूजा हो रही है ?" चन्द्रकेतुने उत्तर दिया—"हाँ, पद्मादेवीका पूजन हो रहा है।" "पद्माकी पूजा ? हा ! भाग्यका कैसा विचित्र विधान है ! जहाँ जाता हूँ, वहींपर पद्मा दिखायी पड़ती है !" बस, चन्द्रकेतुके मुखसे पद्माका नाम निकलते ही चन्द्रधर थालीसे उठ खड़ा हुआ। मारे क्रोधके उसका सारा शरीर

थर-थर काँपने लगा। उपवासी चन्द्रधर मुण्डसिंहकी भाँति मकानसे बाहर भाग आया और मित्रके दिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंका परित्यागकर उसने फिर वही कौपीन धारण कर ली।

चन्द्रधरके उक्त व्यवहारको देखकर चन्द्रकेतु अवाक् हो रहा था। आश्चर्यके मारे सारी सिट्टी भूल गयी थी। बाधा देनेका प्रयत्न किया, पर सफल न हो सका। नाराजीका कारण पूछनेपर चन्द्रधरने कहा—"तुम बड़े नीच हो! तुमने मुझसे पहले यह क्यों नहीं कहा, कि मैं पद्माका पूजक हूँ? पद्मा मेरी दुश्मन है। उसने मेरा सर्वनाश किया है। वह मेरी माता दुर्गाकी भी शत्रु है। अतः मैं उसे अपना घोर शत्रु समझता हूँ।" यह कहता-कहता चन्द्रधर भूखकी कुछ परवाह न कर, शीघ्रतासे वहाँसे भाग गया। चन्द्रकेतुने उक्त निराधार बातको सुन और जी छोड़कर उसका भागना देख, अनुमान किया—"चन्द्रधर सम्भवतः पागल हो गया है।"

फिर उसी भिखारीके वेशमें, अनाहार अवस्थामें गाँव-गाँव घूमकर चन्द्रधरने भिक्षा द्वारा थोड़ेसे चावल पाये। उन चावलोंको एक स्थानपर यत्नके साथ रख वह स्नान करने गया। सोचा था, स्नानके बाद उन्हें पकाकर पेटकी आग बुझाऊंगा, किन्तु उसके पीठ फेरते ही पद्मा-देवीने उन चावलोंको चुराकर नदीमें डाल दिया। भूखसे व्याकुल चन्द्रधरने आकर देखा, कि उसके कष्ट-सञ्चित चावलोंकी पोटली अपने स्थानसे गायब है। उस समय मुग्ध-दृष्टिसे एक बार आकाशकी ओर देखा

एवं "छे पुत्रोंके शोकसे जो प्राण नष्ट नहीं हुए थे, वे अनाहारसे इतना शीघ्र न जा सकेंगे।" यही अर्द्धस्फुट स्वरसे कहकर वह पद्माको कटु-वाक्य कहने लगा।

जो नित्य प्रति अपने बन्धु-बान्धव और आश्रितोंको विविध रस-पूर्ण, बढ़िया बढ़िया भोजनों द्वारा तृप्त रखा करता था, उसी वणिक्-कुल-चक्रवर्त्ती, देश-प्रसिद्ध चम्पक नगरके राजा चन्द्रधरने आखिर नदी किनारे जाकर वहाँपर पड़े कितने एक केलेके छिलकोंको खाकर जठराग्निको शान्त किया। जिस समय चन्द्रधर वहाँ बैठा बैठा, भोजनोपरान्त अपने भाग्यकी चिन्ता कर रहा था, उस समय उसी रास्तेसे कितने एक लकड़हारे जा रहे थे; उन्होंने चन्द्रधरको, उस दरिद्र अवस्थामें देख, कोई फकीर समझा। अतएव उनमेंसे एक बोला—"ओ भले आदमी! अगर तुम कुछ दिनों हमारे साथ जङ्गलसे लकड़ी काटकर लाया करो, तो तुम्हें जगह जगह भीखके लिये टक्करें मारनेसे छुटकारा मिल जा सकता है। साथ ही हमारी जरूरत भी पूरी हो जायेगी और तुम्हें मुनाफा भी खूब होगा।" चन्द्रधरने सोचा—पासमें एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। कई दिन भूखों मरते बीत गये। किसी तरह घर भी पहुँचना है। कहीं इन फटे हालोंसे घर थोड़े ही जाया जायेगा? दो चार कपड़े भी आवश्यक होंगे। इन सब बातोंके लिये पैसोंकी दरकार है हो। यदि इनके कथनानुसार परिश्रम द्वारा कुछ अर्थ-प्राप्ति हो जायेगी, तो फिर उद्देश्य-सिद्धिमें बाधा पड़नेका कोई कारण नहीं। यह सोचकर चन्द्रधरने उन

लकड़हारोंकी बात मान ली। लकड़हारे उसे अपने साथ जङ्गलमें ले गये।

तपे हुए सोनेके समान गौर वर्णवाला, सौभाग्यकान्ति, श्मशानका कफ़न पहने दिगम्बरप्राय: वणिक-राज, उस समय अपने उपास्य देवता भगवान् शिवकी भाँति मालूम हो रहा था।

चन्द्रधरको, लकड़हारोंकी अपेक्षा काठकी पहचान अच्छी थी। अतएव अन्य आदमियोंने तो साधारण काठ काटा, पर चन्द्रधरने एक चन्दन काष्ठका खूब बड़ासा बोझा तय्यार कर लिया और सबके साथ सिरपर रख नगरकी ओर बेचनेके लिये चल दिया। किन्तु मनसादेवीके आदेशसे अदृश्य, वायु-पुत्रने अपने भारसे बोझेको बेतरह भारी बना दिया। चन्द्रधर चेष्टा करनेपर भी उसे अधिक देरतक सिरपर न रख सका; अतः बोझेको उसने वहीं पटक दिया।

इस प्रकार पद-पदपर लाञ्छित होकर चन्द्रधर अब एक ब्राह्मण-घरका दास बना। स्वामीके आदेशसे धानोंको निरानेके कामपर नियुक्त हो चन्द्रधर, यहाँ पद्माकी मायाका शिकार बन गया और धान तथा भुस्सीकी भिन्नता न समझ सकनेके कारण भुस्सीके बदले, उसने बहुतसे धान उठाकर फेंक दिये। इस अपराधपर ब्राह्मणोंके घरसे उसे जवाब मिल गया। अतः खिन्न चित्तसे चन्द्रधर जङ्गल-जङ्गल मारा मारा फिरने लगा। एकदम अनमने अथच विक्षिप्त भावसे विचरण करता हुआ वह अर्द्धस्फुट स्वरसे पद्माको बुरा भला कहने लगा। उसी स्थानपर

कितने एक शिकारी पखेरू पकड़नेके लिये जाल बिछाये बैठे थे; चन्द्रधर उस समय एकदम बाह्य-ज्ञान-शून्य था।

शिकारियोंके जालके पास पक्षी आये और वे फन्देमें फंसने वाले ही थे, कि इसी समय उद्भ्रान्त सौदागरके असावधान पैरोंके शब्द और बकनेसे चौंककर उड़ गये। यह देखकर व्याधोंको चन्द्रधरपर बड़ा क्रोध हुआ। वे दाँत पीसते हुए, उसके पास आये और बोले—"क्यों बे! तूने हमारे पक्षियोंको क्यों उड़ा दिया? अब तुझे ही हमारे उन पक्षियोंको पकड़ना होगा।"

सौदागर उनके तिरस्कार और कटूक्तियोंको स्थिर हो शान्त भावसे सुनता रहा। फिर भी, अपनी बातें बड़बड़ाता रहा, पर शिकारियोंकी बातका उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया। आखिर थक-भककर चन्द्रधरको पागल समझकर वे लोग वहांसे चले गये।

उस समय साँझ हो चुकी थी। सूर्य्यास्तका मनोहर स्निग्ध प्रकाश वनान्त भूमिके उच्च भागोंपर किरीटनीसो शोभा दान कर रहा था। निकटवर्त्ती ग्रामसे किसानोंके गाये पूर्वी रागोंसे, सारा वनभाग मुखरित हो रहा था। निविड़ स्थानों तथा पहाड़ोंकी गुफाओंकी गोद छोड़कर रात्रिका अन्धकार समस्त जगत्‌को ग्रास करनेके लिये अग्रसर हो रहा था। श्मशानके क़फ़नको कौपीन धारण किये, काञ्चन प्रतिमा प्रौढ़ दिगम्बर-मूर्त्ति सौदागर आकाशकी ओर ताकता हुआ हाथ जोड़कर बोला, "भगवान्! तुम्हारा यह सेवक मनकी प्रसन्नताके सिवा

और कुछ भी नहीं चाहता। अब कृपाकर ऐसा वर दीजिये, कि इन अत्याचारोंके फेरमें पड़कर मैं किसी तरह आपको न भूल सकूँ। आपकी सेवाके पुरस्कारमें मैं मणिमुक्ताओंसे खचित राजप्रासाद, धन-सम्पत्ति और पुत्र-पौत्रोंके लाभकी इच्छा नहीं रखता।"

इतना कह उस वन-प्रदेशमें एकदम निराश्रयी चन्द्रधरने दुर्गतिकी चरम सीमापर पहुँचकर, देवाधिदेव महादेवकेश्रीचरणों-में केवल आँसुओंकी कितनी एक बूँदें उपहारमें दीं। एक बिल्व-पत्र और एक धतूरेके फूलकी खोजमें सौदागरके नेत्र इधर उधर दौड़ने लगे; किन्तु अभागेको उस स्थानपर वे भी प्राप्त न हो सके। आखिर उसी भिखारी-वेशमें, अनादरसे मृतप्राय चन्द्रधर भगवान् महादेवका स्मरण करता हुआ स्वदेशकी ओर अग्रसर हुआ। धन्य आत्मबल! धन्य दृढ़ प्रतिज्ञा! और धन्य शिव-भक्त चन्द्रधर!

पाठक! अभी सौदागरकी लाञ्छनाओंका अन्त न हुआ था। सन्ध्याके अन्धकारसे शरीर ढककर चन्द्रधर जब चम्पक नगरमें अपने घरपर पहुँचा, तब उसी वेश—उसी भावसे—सदर दरवाजे द्वारा होकर जानेमें उसे बड़ी लज्जा लगी। अतएव वह खिड़की द्वारा भीतर जाने लगा।

इतने दिनोंके बाद, उस अपूर्व वेशमें इस अद्भुत चेहरेको देखकर, रात्रिके अन्धकारमें दास-दासी और दर्वान लोग किसी प्रकार भी राजाको न पहचान सके एवं वे उसे कोई चोर-उचक्का समझ मारनेके लिये दौड़ पड़े। लज्जाके कारण, चन्द्रधर भी

उन्हें एकाएक अपना परिचय न दे सका। यदि देता भी, तो वे लोग उसपर सहसा विश्वास नहीं करते। अन्तमें हुन्द-गपाड़ेका शोर सुनकर, जब स्वयं अलका प्रकाश लेकर आयी, तब सभी लोग डरसे काँपते-काँपते अपनी भयंकर भूल समझ सके। अब तो मारे लज्जाके सभीके सिर नीचे हो गये। सभी पहचान गये कि जिनको वे चोर समझकर मार रहे थे, वे और कोई नहीं, उनके राजा स्वयं चन्द्रधर सौदागर हैं।

महारानी अलका, स्वामीको इस अवस्थामें लौटता देख, अत्यन्त व्याकुलताके साथ रोने लगी। चौदह नावें, जिनमें कुवेर-का रत्न-भाण्डार भरा हुआ था—मधुकर नौकाके साथ काली-दहमें डुब गयीं, साथका एक भी आदमी जीवित न बचा—यह कथा सुनकर अलका शोकसे आकुल हो उठी। लक्ष्मी-भ्रष्ट होकर ऊपर ही ऊपर अनन्त आपत्ति आयी। निर्वंश सौदागरके घरमें लक्ष्मी-देवीके चरण-कमलोंके अलङ्कारोंकी लाली मिट गयी। मधुकर नौकाके साथ सारा वैभव नष्ट हो गया—इत्यादि सोच-सोचकर अलकाके शोकका वारापार न रहा।

देवी अलकासे चन्द्रधरने केवल सामुद्रिक विपत्तियाँ ही कही थीं; अपने ऊपर कैसे सङ्कट आये, उनके बारेमें उसने एक शब्द भी न कहा था; किन्तु साध्वी स्वामीके उन्नत ललाट—दर्प-णोपम ललाटकी कालिमाको देखकर उन कष्टोंका सारा इतिहास समझ गयी। अब तो अलकाका हृदय, रात-दिन अपनी दशाके इस परिवर्तनका विचार करते-करते जलने लगा। वह भी

अश्रु-सिक्त नेत्रोंसे आकाशकी ओर देख पद्मा-देवीसे बोली—"मातः! आपकी यह दासी, अपने पतिके हृदयमें आपके प्रति भक्तिका संचार न कर सकी। इसलिये आप किसी और ऐसी प्रभाव-विशिष्ट शक्तिको मेरे घरमें भेजिये, जिसकी चेष्टासे यह असाध्य-साधन सिद्ध हो सके। इस तरह आप अपना मङ्गल कलस अपने हाथोंसे ही स्थापित कर जायें। हमारी परीक्षाएँ लेनेसे कोई भी शुभ परिणाम न निकलेगा। उनका हृदय अत्यन्त दृढ़ है। जैसे-जैसे आपने कष्ट दिये हैं, उनसे यदि कोई कुलिशका हृदय भी होता, तो वह अबतक कभीका भग्न हो गया होता। परन्तु यहाँ वे मानों स्वाभाविक घटनाएँ ही सिद्ध हुईं।"



लक्ष्मीन्द्र-जन्म



वर्षाके अन्धकार पूर्ण आकाशमें, काले-काले मेघोंकी गोदमें, क्षीण विद्यु त्-रेखाकी तरह शोक-दुःखके अन्धेरेसे ढके चम्पक नगरके काले आकाशमें मानों फिर एक आशा और आनन्दसे पूर्ण प्रकाश दिखायी दिया। नीरव-निरानन्द, कोलाहल-शून्य चन्द्रधरके विशालराज-भवनमें फिर शङ्ख, घण्टे और घड़ियाल बज उठे। पड़ोसकी स्त्रियाँ बोलीं—"अहा! रानी अलकाके यहां फिर एक राजकुमारका जन्म हुआ है। कहीं ऐसा न हो, कि पागल चन्द्रधर पद्माके साथ विवादकर इस पुत्रसे भी हाथ धो बैठे। अहा! बालकका कैसा चाँदसा मुखड़ा है।" अलकाने सौतिक-गृहमें ही बच्चेके शरद्के पूर्ण-चन्द्रकी भाँति प्रफुल्ल मुखको देखा। जिस प्रकार पूर्णिमाके चन्द्रके उदय होनेसे समुद्र उथल उठता है, उसी प्रकार शोकार्त्त, मातृ-हृदयका चिरकालसे रुका हुआ समस्त स्नेह, उस बालकके मुखको देखते ही उथल उठा।

बालकका मुख देखकर पहले तो अलकाके हृदयमें छहों मृत

पुत्रोंका शोक नये सिरेसे जाग उठा; किन्तु सर्व सुलक्षण, परम सुन्दर सद्यजात पुत्रकी माया-ममतासे वह शोक बहुत कुछ दब गया।

एक नेत्रकी कोरसे आशंका-जनित अश्रु जैसे ही गिरनेको हुए, कि दूसरा नेत्र बालकका मुखचन्द्र देख प्रसन्नतासे खिल उठा। मानों चिरकालसे जलनेवाली हृदय-ज्वाला सहसा बुझ गयी। अलकाको डर था, कि ऐसा न हो, जो निःसन्तान गृहको देख, लक्ष्मी रूठ जायें, अतः इस पुत्रके उत्पन्न होनेसे उसकी वह आशंका दूर हो गयी। उसने लक्ष्मीको सदा सर्वदा बाँध रखनेके अभिप्रायसे पुत्रका नाम रखा लक्ष्मीन्द्र।"

चन्द्रधर पुत्रके मुखको देखकर प्रसन्न हुआ; किन्तु साथ ही साथ उसके असामान्य रूपको देख, वह डरा भी—यदि यह पुत्र भी अन्यान्य पुत्रोंकी नाईं पद्माके कोपानलकी आहुति हो जायगा तो वह फिर किस प्रकार स्थिर रह सकेगा? वह महेश्वरसे, शक्तिकी प्रार्थनाकर दिन और रात जागते ही व्यतीत करता था। ज्योतिषियोंने बालककी जन्मपत्री बनाते समय ग्रह-गोचर देख-नेके बाद सौदागरसे कहा था, "विवाहकी रातको आपके इस दुर्लभ लक्ष्मीन्द्रकी सर्पाघातसे मृत्यु होगी।" यह सुन सौदागरने एक लम्बा श्वास छोड़ा। अब वह संसारके सुख-दुःखोंसे परे, शान्तिमय स्थानको, अन्धकारमें रत्न खोजनेवाले व्यक्तिकी तरह ढूंढ़ने लगा। उसके मुखसे आजकल निरन्तर शिव-शिवकी ध्वनि निकलती रहती है। मनमें आशा और आनन्दका कोई भी लक्षण

नहीं दीख पड़ता। वह जिस प्रकार पहले उदास रहता था, उसी प्रकार अब भी निर्विकार भावसे जीवन व्यतीत करता हुआ स्वयं ही उस परीक्षाके दिनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

देखते-देखते लक्ष्मीन्द्रकी किशोरावस्था व्यतीत हुई। अलकाने ममताको अपनाया था, अतः वह दिन-रात लक्ष्मीन्द्रके लिए सैकड़ों शुभ अनुष्ठान करती थी ; किन्तु चन्द्रधरको पुत्रकी उतनी ममता करते न देख, वह बड़ी दुःखित होती थी। अलकाको इस बातका पता नहीं था। किन्तु चन्द्रधर पुत्रको चाहता हैं, किन्तु एक कारण है, जिससे उसे जबर्दस्ती अपना मन रोकना पड़ता है। अतः वह सोचती—स्वामी शोक और दुःखसे अनमने और उद्भ्रान्त हो गये हैं। उनका हृदय पहलेकी भाँति कोमल नहीं रहा है; वे निर्मम जड़ हो गये हैं।

उठती जवानीमें लक्ष्मीन्द्र वणिक्‌गृहका दीप स्वरूप हुआ। जिस प्रकार केवल एक दीपककी ज्योतिसे सारा अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार चन्द्रधरका वह विशाल राज-प्रासाद लक्ष्मीन्द्रके रूप और गुणोंसे उज्ज्वल हो उठा। लक्ष्मीन्द्रको, उस घरके सब लोग "दुर्लभ लक्ष्मीन्द्र" कहकर पुकारा करते थे। बड़े दुःख, बड़े कष्ट और बड़ी तपस्याओंके बाद लक्ष्मीन्द्रका जन्म हुआ था, इसलिये वह दुर्लभ समझा गया।

लक्ष्मीन्द्र इस समय पूर्ण युवक है। उसने अपना जाति-व्यवसाय बहुत प्रकारसे सीख लिया हैं। शिक्षा भी खूब हुई है। उसने काव्य, नाटक और अलंकार साहित्यके इन विषयोंमें काफी

योग्यता प्राप्त कर ली है। वह केवल चन्द्रधरके गृहका गौरव नहीं है, वरन् उस विशाल चम्पक नगरीका गौरवस्थल है। लक्ष्मीन्द्र जिस ओर निकल जाता है, उसी ओरके सब लोगोंके मुखपर आनन्दकी रेखा फूट उठती है—उसके साथ बात-चीत करनेहीसे लोग अपनेको कृतार्थ समझने लगते हैं। केवल चन्द्रधर ही ऐसा है, जो अपनी धर्मबुद्धिको हृदयमें पुष्टकर, बड़े संयम के साथ, लक्ष्मीन्द्रसे अपनेको दूर रखता है—आदरके धनको आदर करनेका साहस नहीं करता और छातीसे चिपटाये रखनेके स्थानपर, उसे सोनेके कमरेमें प्रवेश करता देख नीचा मुँह कर विपदका स्मरण करने लगता है।

घर भरमें एकमात्र अलका ही ऐसी है, जो माँगमें सिन्दुर पहनती है, मधुर और षट्रस भोजन करती है। छहों बहुओंके लिये सादा और सामान्य भोजन बनता देखकर अलकाको खाना अच्छा नहीं लगता। जिस समय वह अपने दुःख-रेखासे सिकुड़े मस्तकपर सिंदूर लगाती है उस समय बहुओंका शुभ्रचन्द्रसा उज्ज्वल ललाट देखकर उसका हृदय रोने लगता है। अब वे किसके सौभाग्यपर सायंकालके समय थोड़ा शृङ्गार करें और किसके कल्याण मांगमें सिन्दूर भरें। अलका भी पान नहीं खाती, तीज-त्यौहारके दिन नई चूड़ियाँ नहीं पहनती। जिनके बहाने इन सब चीजोंका व्यवहार करनेमें उसे चाव आता था, आज उन्हें वह एकान्तमें आँसू बहाते देखती और चुपचाप अपने कमरेमें आकर अकेली रोया करती है। उस दिन

उसे खाना-पीना सब हराम हो जाता है। सोनेकी कंघीसे अपने बाल बहाते समय अलकाकी आँखें भर आती हैं। हाय विधाता! इन कामोंको प्रौढ़ा स्त्रियाँ कर्त्तव्यके लिहाजसे किया करती हैं, सच पूछो तो युवतियोंको यह शोभा देते हैं— सुन्दरी युवतियाँ तो घरमें तपस्विनियोंकी भाँति व्रत करें और प्रौढ़ा यौवनके आनन्दोपभोग करें, यह तुम्हारा कैसा विधान है? एक दिन साँझके समय अलका स्वामीके चरणोंको पकड़कर बोली—"स्वामिन्! मेरे लक्ष्मीन्द्रका अब शीघ्र ही विवाह कर दीजिये। लक्ष्मी बहू महावरसे रंग, नूपुर-मुखर-क्रीड़ाशील पदोंसे राज-महल में फिरा करेगी, मैं उस शब्दको सुनूँगी और आँगनमें महावरके चिह्नोंको देखकर अपने मनको शान्ति दूँगी। सुवर्णकी डिबियामें भरे सिन्दूरको उसकी माँगमें भरकर अपनेको कृतार्थ समझूंगी।" जिस प्रकार एक पथिक सहसा सर्पका स्पर्श हो जानेसे चौंक उठता है, इस प्रस्तावको सुनकर चन्द्रधर उसी प्रकार चौंक उठा। विवाहकी रातका दृश्य उसकी आँखोंके सामने प्रत्यक्ष मूर्त्ति धारणकर नाचने लगा। अतः वह भीत हृदयसे अलकाकी इस प्रार्थनाको एकदम अग्राहकर दूसरे कमरेमें चला गया। अलका पाषाण प्रतिमाकी तरह उसी स्थानपर खड़ी रही। उस समय नदीके कणोंसे सिक्त शीतल पवन दीवारके झरोखोंसे कमरेमें प्रवेशकर उसके कुञ्चित केशोंके अग्रभागको स्नेहके साथ स्पर्श कर रहा था। पश्चिम आकाशकी नीलिमाको भेदकर शुक्र स्वामी-उपेक्षिताके कपोलोंपर बहनेवाली अश्रु-

धाराको उज्ज्वल कर रहा था। अलकाके हृदयका समस्त सञ्चित दुःख आज सहसा उथल उठा। उसके स्वामीने उसकी इतनी आदर्र-भरी बातको, आज बड़े ही निर्दय भावसे उपेक्षित कर दिया है, इसीसे वह कमरेमें खड़ी-खड़ी चुपचाप अश्रु-विसर्जन कर रही है।

सायंकालीन भोजनके लिये लक्ष्मीन्द्र आया और घरमें माताको न देखकर वापस लौट गया। उसने "मा! मा!" करके कई बार पुकारा भी, किन्तु अलकाने नहीं सुना। इस प्रकार एक पहर बीत गया, तथापि अलकाके हृदयकी व्यथा दूर न हुई। आह! जो अलका पहले पुत्र-शोकमें ऊँचे स्वरसे रोकर सान्त्वना पाया करती थी, वह आजके दुःखमें एकदम नीरव है। यह दुःख उसके लिये बिल्कुल नया है। इसके सहन करनेमें वह तनिक भी अभ्यस्त नहीं। इस समय केवल उसके कपोलोंपरसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। एवं रात्रिके तारागण झरोखोंके रास्तेसे उन उपेक्षा-सम्भूत अश्रु-बिन्दुओंको स्वर्गीय उज्ज्वलता प्रदान कर रहे थे। अलकाको इस समय तनिक भी होश नहीं था; वह आत्मविस्मृत हुई खड़ी थी।

चन्द्रधर, राज-सभा विसर्जनकर रात हो जानेपर जब अपने कमरेमें आया तब देखा, कि अश्रुमुखी अलका उसी स्थानपर उसी भावसे चुपचाप खड़ी है। स्वामीको देखकर अलका उसके भोजनका प्रबन्ध करनेके लिये बाहर जानेको उद्यत हुई। चन्द्रधर आदरसे उसका हाथ पकड़कर बोला—"क्या तुम तभीसे

इसी तरह खड़ी हो ?" स्वामीका आदर पाकर अलकाके नेत्रोंसे दर-दर करके आँसू गिरने लगे; पर वह कोई उत्तर न दे सकी।

चन्द्रधर अभिमानिनीके मनकी बात समझ गया। यदि वह अलकासे भी ज्योतिषीकी भविष्यद्वाणीकी बात कह दे, तो संभव है, पुत्रवत्सलाका हृदय विदीर्ण हो जाये! और ज्योतिषीकी बात सोलह आना सच्ची ही उतरेगी, इसका भी पूरा क्या विश्वास? लक्ष्मीन्द्रके विवाहकी बात सुनकर, सौदागरके हृदयमें एक बड़ी भारी आशंका पैदा हुई। वह अब क्या करे, कुछ भी स्थिर न कर सका।

थोड़ी देरके बाद अपने दुपट्टे के छोरसे अलकाकी आँखोंके आँसू पोंछकर चन्द्रधर बोला—"प्रिये! तुम जानती ही हो कि पद्मा-देवीने अभीतक हमारी प्रतिकूलता करनी नहीं छोड़ी है। जिस घरको छै विधवा पुत्र वधुओंने श्मशानसा बना रखा है, उस घरमें मुझे अब और एक बहू लानेका साहस नहीं होता। यदि मैं बेटेका विवाह कर लाया और शत्रु पद्मा उसे न सह सकी, तो दुःखके ऊपर दुःखके पहाड़ टूट पड़ेंगे।"

अलका रोती-रोती बोली—"खैर, लक्ष्मीन्द्रके विवाहकी बात आप जाने दें, आप तो उसे निगाह उठाकर प्रेमकी दृष्टिसे देखते भी नहीं, यह क्या कम दुःखकी बात है? जिस लक्ष्मीन्द्रको छै पुत्रोंकी बलि देकर पाया है, आप उसे तनिक भी प्यार न करें, यह एक भारी निर्दयता है या नहीं? पद्माके डरसे क्या आप उसे जीवन भर अविवाहित रखेंगे? मेरी समझमें पद्मा देवीकी शत्रुता-

का अन्त हो गया। आप ही बतायें, यदि लक्ष्मीन्द्रकी बहू न आयेगी, तो मेरे इस सूने घरको कौन भरेगा? मेरी बड़ी इच्छा है, कि बहूके साथ लक्ष्मीन्द्रको लेकर नये सिरेसे परिवार बसाऊं। अतएव मैं आपके पैरों पड़ती हूँ आप मेरी इस शुभ-अभिलाषामें बाधक न बनें।" इतना कहकर अलका अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे चन्द्रधरके चरणोंमें गिर पड़ी। चन्द्रधर भौंहें मरोड़कर थोड़ी देरके लिये मन ही मन उपस्थित समस्यापर विचार करने लगा, कि यह बात अभी कौन कह सकता है कि ज्योतिषीकी बात सच्ची निकलेगी? यदि मैं चेष्टा करके ऐसा घर बनाऊं कि जिसमें पुत्र और पुत्र-वधू सानंद-निष्कण्टक होकर विवाहकी रात बिता सकें, तो पद्माकी शत्रुता मेरा कुछ भी ना बिगाड़ सकेगी। यही ठीक है, इस हतभागिनी और दुःखिनीकी इच्छा अपूर्ण तो न रहेगी।"

इतना सोचकर चन्द्रधर अलकाको, आदरके साथ उठाकर मधुर स्वरसे बोला—"प्रिये! दुःखित न होओ। मैं तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ। लक्ष्मीन्द्रका शीघ्र ही विवाह कर दूँगा। कहो, अब तो प्रसन्न हो न?"

इतना सुनते ही अलका स्वामी-प्रेमसे गद्‌गद् हो उठी। उसने एक बार फिर स्वामीके चरणोंमें सिर नवाकर कृतज्ञता जतायी।



विपुला

१२

यशोधर ग्रामके जमींदार, सेठ राधामोहन शाह अपनी धन-सम्पत्ति और कुलीनताके लिये वणिक् जातिमें सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। व्यापार और वाणिज्यके क्षेत्रमें उनका नाम सबसे पहले नहीं, तो दूसरी कोटिके व्यापारियोंमें अवश्य पहले लिया जाता था। पूर्व प्रदेशके प्रायः प्रत्येक नगरमें उनकी एक दो कोठियाँ थीं, जिनमें हुण्डी-पर्चेका काम धूम-धामसे होता था। साथ ही उनके मान और प्रतिष्ठाका सिक्का उस समयके प्रायः प्रत्येक राज्यमें जमा हुआ था।

उनके सात पुत्र और एक कन्या थी। कन्याका नाम था विपुला। विपुला रूप और गुण दोनोंमें असामान्या थी। उसका कण्ठ-स्वर कोकिलकी कूक सा मालूम होता था। जिस जमानेकी हम कथा कह रहे हैं, उस समय नृत्य और गान-विद्याकी देशमें खूब प्रतिष्ठा थी। लोग साहित्य-शिक्षाके साथ संगीत-विद्या भी सीखते थे। वे इसे देवत्व प्राप्त करनेका एक प्रधान साधन समझते थे। अतएव क्या स्त्री और क्या पुरुष, सभीको संगीत सीखना पड़ता था। विशेषकर भारतके पूर्वाञ्चलमें, इस विद्याका सीखना अनिवार्य्य सा था। यही कारण है, जो

संगीत-विद्याकी इस अवनतिके युगमें भी बंगाल प्रान्तमें इसका घर-घर प्रचार देखा जाता है। यहाँ अब भी क्या स्त्री और क्या पुरुष, संगीतसे थोड़ा बहुत प्रेम सबको है। हाँ, तो उस समय-की प्रथाके अनुसार विपुलाने भी संगीत-विद्या सीखी थी। उसे इस विषयमें साधारण ज्ञान नहीं था, वरन् संगीतमें उसने पूरी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी। यहाँतक कि, उसके जोड़की गाने और नाचनेवाली, जिनका यह खास तौरसे पेशा होता है, उन नर्त्तकियोंमें भी, कोई नहीं थी। दूर दूरके देशोंतकमें उसकी इस विषयमें प्रसिद्धि फैली हुई थी। लेकिन उसकी संगीत-विद्यामें इस असाधारण पारदर्शिताको देख पाठक यह न समझें, कि गाने-बजानेके सिवा उसे और कुछ आता ही न था। उसमें स्त्रियोचित सभी गुणोंका यथेष्ट समावेश था। वह रन्धन-कार्य्यमें दूसरी अन्नपूर्णा और साहित्य-शिक्षामें साक्षात् विद्यावती थी। शिल्पकार्य्यमें तो उसकी जोड़ी ही न थी। यह तो हुई विपुलाके गुणोंकी प्रशंसा। अब तनिक उसके रूपका वर्णन भी सुन लीजिये।

लोग कहते हैं, संसारमें सबसे सुन्दर पूर्णिमाका चाँद है। यदि रूपकी सीमा चन्द्रमामें ही खतम है, तो हम यह बात लाखोंमें कह सकते हैं, कि विपुलाके रूपके सामने पूर्णिमाका चाँद एकदम हेच मालूम होता था। उसके केशोंको देखकर कादम्बिनी आका-शके एक कोनेमें जा छिपती थी। उसका वर्ण सुवर्णकी आभा-को शर्माता था। मुखके भीतरकी दन्त-पंक्ति मुक्ता-मालाको मात

करती थी। नेत्र हीरेसे मालूम होते थे। हंसकी सी गति और हरिण-शावकसी चपलता एक निराली ही छटा छहरा देती थी।

पड़ोसकी स्त्रियाँ विपुलाको स्वर्ग-भ्रष्ट अप्सरा कहा करती थीं। विपुला जहाँ कहीं भी जाती, वहींके लोग उसकी बातोंको शिरोधार्य्यकर मान लेते थे। उसकी सरल बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुई बातोंसे अनेक गृहस्थोंके भारी-भारी झगड़ोंका निपटारा हो जाता था।

कुमारी विपुला जिस समय जिस स्थानमें रहती, उसी स्थानपर उसके नृत्य और गीतोंके स्रोत बहने लगते थे। इन्द्रकी सभा मात हो जाती थी। सरस्वती और विश्वकसेनाके गान का सा समा बँध जाता था।

वास्तवमें विपुला अन्यान्य साधारण बालिकाओंके जैसी नहीं थी। वह संसारमें रहती हुई भी हरदम मानों किसी स्वर्गीय राज्यकी कल्पना करनेमें रत रहती थी। जिस समय उसकी प्यारी सहेलियाँ ध्यान देकर देखती कि विपुला योगिनीकी भाँति, कानोंमें कुण्डल पहने सन्ध्याके समय, नदी-तटपर आकाशकी ओर दृष्टि लगाये, निश्चल और अटल भावसे बैठी है, अचल चित्र की भाँति वायुसे उसका एक बाल भी नहीं हिल रहा है; उस समय वे उस पुण्यशीला ध्यानवतीका चिन्ता-स्रोत नष्टकर उसके साथ वार्त्तालाप करनेका भी साहस न कर पाती थीं। चुपचाप, चित्र-लिखितकी भाँति खड़ी रहती थीं। जब कभी किसी विधवाके शोकके मारे जमीनमें पड़े शिरको अपनी गोदमें

ले विपुला उसके अस्त-व्यस्त केशोंको एकत्र करती हुई, दो एक अश्रुबिन्दु गिरा देती, उस समय वह सचमुच देव-बालिकाके जैसी मालूम होती थी।

यदि कोई शोकार्त्त व्यक्ति उसकी ओर नजर भरकर भी देख लेता, तो वह यही सोचने लग जाता था, कि उसके दुःखने किसी करुणामयी स्वर्गीय कन्याके हृदयमें समवेदना प्रकट कर दी है और इसीसे वह, स्वर्गके सुखोंको त्यागकर, उसकी व्यथासे व्यथित हो, प्रत्यक्ष मूर्त्ति धारणकर सान्त्वना देने आयी है। विपुला अपने मुँहसे कुछ न कहती थी, किन्तु अपने स्निग्ध-करुण भावसे अगाध शान्ति वितरण करती थी। सारांश यह कि, स्वर्गकी कन्याओं और विपुलामें तनिक भी भेद नहीं था। रूप और गुण सबमें वह अतुलनीया थी।

आजकल विपुलाने किशोरावस्थाको पारकर युवावस्थामें पदार्पण किया है। कैशोर और युवा-अवस्थाका संगम होते ही विपुला और भी सुन्दर बन गयी है। अब उसका पहलेके जैसा स्वभाव नहीं रहा है। जहाँ चञ्चलता थी, वहाँ गंभीरताने अधिकार कर लिया है। चपलताकी जगह लज्जाने ग्रहण कर ली है। अतएव अब उसे सखियों और सहेलियोंके साथ जहाँ-तहाँ घूमना पसन्द नहीं रहा। अब उसे साहित्य, नीति, धर्म और शिल्प-कलासे अधिक प्रेम हो गया है। वह अपनी मातासे आजकल गृहचर्य्या पति-भक्ति, पारिवारिक-व्यवहार तथा आतिथ्य-सत्कारकी शिक्षा ग्रहण करती है। गुणोंमें

विशेषता लाने और चरित्रको विशेष रूपसे संगठित करनेके लिये उसकी पूज्या माता रामायणकी सीता, अनसूया एवं महाभारतकी द्रौपदी, सावित्री, दमयन्ती, चिन्ता, शैव्या और शकुन्तलाके उपाख्यान पढ़ाती और उनके चरित्रोंकी विशेषताएँ समझाती है। इस ढङ्गकी शिक्षाका विपुलापर प्रभाव भी काफी पड़ रहा है। उसने अनसूयाके उपाख्यानसे यह सीखा है कि, स्त्री कैसी ही सुन्दरी और राज-सुख-पालिता क्यों न हो; पर वनचारी तपस्वी-पतिकी सेवाके लिये उसे संसारके सारे सुखोंका परित्याग कर देना चाहिये। सतीके उपाख्यानसे उसे यह मालूम हुआ है; कि पति-निन्दा सुनना पतिव्रता स्त्रीके लिये घोर पातक है। अतः उसे चाहिये कि, जहाँ पतिकी निन्दा होती हो, वहाँ प्राणोंका त्याग भले ही कर दे, पर उस दुष्कृत्यको न होने दे। इनके साथ ही पार्वतीके उपाख्यानने उसे यह बतलाया है, कि भिखारी पतिकी सेवा करनेमें जैसा सुख है, वैसा सुख स्वर्गमें भी प्राप्त होना दुर्लभ है। सावित्रीके चरित्रने बताया है कि, एक सच्ची पति-व्रता स्त्री अपने पातिव्रत-बलके द्वारा, विधाताकी विधि और सारी देव-शक्तियोंतकको परास्त कर सकती है—अकालहीमें मरे पतिको यमराजके हाथोंसे छीन ला सकती है। सीताजी महाराज जनककी दुलारी लड़की और सम्राट् दशरथकी पुत्र-वधू होकर भी, केवल पति-सेवाके लिये—केवल पतिको प्रसन्न रखनेके लिये—जीवन भर वनमें रहीं। महारानी दमयन्ती और सम्राज्ञी शैव्या पतिकी छायाके समान, सुख और दुःखमें उनके साथ

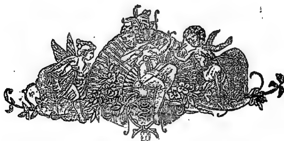
रहीं; यहाँतक कि शैव्याने तो पतिको ऋण-मुक्त करनेके लिये अपना शरीर भी बेच डाला था। ये तीनों देवियाँ रमणी-कुलके लिये पूजनीया हैं। इनके जीवन-साँचेमें अपना जीवन ढाल लेना प्रत्येक स्त्रीका परम कर्त्तव्य है। अतएव विपुला दिन-दिन अपने जीवनको उक्त देवियोंकी भाँति सरल और साधु बनाती जाती थी। दास-दासियोंसे नम्रता, पिता-मातासे सेवा और भाई तथा सखियोंसे स्नेह पूर्ण व्यवहार करती थी। अतः धीरे-धीरे विपुलाके रूप-गुणकी प्रशंसा सर्वत्र फैल गयी।

ऐसी गुणवती पुत्रीको पाकर सेठ राधामोहन और उनकी स्त्री अरुन्धती अपनेको भाग्यवान् समझती थीं। उन्हें अपने सातों पुत्रोंका उतना गर्व नहीं था, जितना कि विपुलाके माता-पिता होनेके कारण वे अपनेको धन्य समझते थे।

क्रमशः विपुलाके रूपकी प्रशंसाने यशोधरकी सीमा पारकर तत्कालीन समस्त नगरोंमें प्रवेश किया। लोग कहते थे, राधा-मोहन सेठकी कन्या विपुला असामान्य रूपवती और सरस्वती सी गुणवती है। उसके जैसी सुन्दरी-सौभाग्यवती कन्या इस संसारमें एकदम दुर्लभ है।

धीरे-धीरे यह प्रशंसा, चम्पक नगरमें पहुँची और चन्द्रधर तो नहीं, किन्तु उसके सुपुत्र लक्ष्मीन्द्रके हृदयपर उसने विशेष प्रभाव डाला। क्योंकि जहाँ उसके मित्रोंने विपुलाके रूपकी तारीफ की थी, वहाँ उन लोगोंने यह भी कहा था कि विपुला हमारे राजकुमार लक्ष्मीन्द्रके ही उपयुक्त है। यदि इससे उसका विवाह

हो जाये, तो सोना और मणिके संयोगकी कहावत भी चरितार्थ हो जाये। लक्ष्मीन्द्र बड़ी गंभीर प्रकृतिका था। साथ ही संयम भी उसमें काफी था, तथापि विपुलाकी प्रशंसा सुनकर उसका हृदय अकस्मात् किसी नयी वस्तुकी ओर खिंचने लगा। उसके हृदयमें विपुलाको प्राप्त करनेकी अभिलाषा जाग उठी। प्रेमका बीज हृदय-क्षेत्रमें जड़ पकड़ गया।



वधू-निर्वाचन

१२

अलकाके, पुत्र-विवाह विषयक अनुरोधको स्वीकार कर महाराज चन्द्रधरने वधू-निर्वाचनका भार अपने ही ऊपर लिया। वेदवल्लभ पुरोहितको भी वे इस कार्य्यके लिये उपयुक्त समझते थे, किन्तु अल्पजीवी पुत्रके लिये साधारण वधूकी आवश्यकता नहीं, उसके लिये रूप और गुणोंमें सावित्री होते हुए भी, पतिकी प्राण-रक्षाका दायित्व लेनेवाली सच्ची सावित्री वधूकी आवश्यकता थी। पुरोहितजी महाराज इस बातपर ध्यान रख, ठीक-ठीक निर्वाचन कार्य्य कर सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह था। अतएव रानीको आज्ञा दी गयी, कि वे उनके सफरका सामान दुरुस्त कर दें। कल ही यात्राका दिन है। वे कलसे ही वधू-निर्वाचनके लिये देश देश और गाँव गाँवकी धूल छानेंगे।

महारानी अलकाने यात्राके लिये उपयोगी सभी वस्तुएँ एकत्रितकर नावमें भेजवा दीं। साथमें वेदवल्लभ पुरोहितके जानेकी भी व्यवस्था हुई। वे साथमें रहकर और कुछ न करेंगे, केवल मनोरञ्जन करेंगे। सौदागर रसिकताप्रिय हैं और पुरोहितजी-

का इस कार्य्यमें पूरा अभ्यास है! दूसरे, यात्राके लिये एकसे दोको भला बताया गया है।

चलनेसे एक दिन पहले, रात्रिके समय, महारानी अलका पतिको चिरकाल बाद जल-पथसे यात्रा करनेके लिये जाता देख काँप उठी। मनमें अमंगलकी आशंका और कल्पना-दृष्टिमें काली-दहका दृश्य प्रत्यक्ष मूर्त्ति धारणकर नाच उठा। अलकाका स्त्री हृदय तो था ही, वह फ़ौरन पतिके पास आयी और बोली—"नाथ! आप विदेश न जायें। मुझे अपने लक्ष्मीन्द्रके लिये इसी शहरमें बहुत सी सुन्दरी बहुएं मिल जायेंगी। पद्मा देवी हमारे पीछे पड़ी हुई हैं; ऐसा न हो, कि यह गुंझरी नदी ही पाटणका कालीदह बन जाये।"

महाराज चन्द्रधर पत्नीकी उक्त आशंकाकी बात सुनकर हँस पड़े। बोले—"प्रिये! चिन्ता न करो। ऐसी आशंकाको मनमें स्थान मत दो। मैंने छहों दर्शनोंका अध्ययनकर, इस बातपर पूर्ण विश्वास कर लिया है, कि स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—इस लोकत्रयमें सिवा शिवके और किसी शक्तिका अधिकार नहीं है। कार्य्य, कारण और कर्त्ता, तीनोंमें ही एकमात्र भगवान् शंकर भिन्न रूप और भिन्न नामसे विराजमान हैं। फिर पद्मा कौन है, अथवा उसमें ताकत ही क्या है, जो मेरा तनिक भी अनिष्ट कर सके? तुम सर्वथा निश्चिन्त रहो। शुभकार्य्यमें अमंगलकी आशंका न करो। भगवान् शंकरके शुभमय चरणोंमें अपने विश्वासको स्थिर रखो, फिर तो सदा मंगल ही मंगल है।"

अलका हाथ जोड़कर बोली—"नाथ! आप गुरु, मैं शिष्या हूँ। आपकी प्रत्येक आज्ञाको बिना तर्क-वितर्क किये ही शिरोधार्य्य करना मेरा परम धर्म है। तथापि स्वामिन्! स्त्रियाँ स्वभावसे ही चञ्चला हैं। स्थिर विश्वास रखनेमें सामर्थ्यहीना हैं। इसीसे मैं इतनी कातर और शंकित हो रही हूँ।"

चन्द्रधर—मनको समझाओ। प्रिये! नित्यामय भगवान्‌की शक्ति सर्वोपरि है। उनका सामना संसारकी कोई भी बड़ीसे बड़ी शक्ति नहीं कर सकती। ॥ ८६७

अलका—इतना होते हुए भी नाथ! न मालूम किसकी कोपाग्निमें मेरे छै जवान लड़के आहुति हो गये।

चन्द्रधर—तब क्या प्रिये! तुम पद्माको शिवसे भी ऊँचा स्थान देती हो? सावधान! झूठे विश्वासको सत्यके मार्गमें लानेकी चेष्टा न करना। इस संसारमें भला और बुरा, जो कुछ होता है, सब भगवान् शंकरके अबाध्य विधानोंके अनुसार ही होता है। यह मैं मानता हूँ, कि तुम्हारे छहों पुत्रोंकी मृत्यु सर्प-दंशनसे हुई, परन्तु मृत्यु-पति महाकाल शम्भुके सिवा और कौन ऐसा है, जो मनुष्यको मार सके?

अलका—तब प्रभो! अपने अनन्य भक्तोंपर शिवने ऐसी आपत्तियोंका पहाड़ क्यों गिराया?

चन्द्रधर—सुनो अलका! बिना अपराधके कभी दण्ड नहीं दिया जाता। हम लोगोंने जानकर नहीं, तो अनजानमें उनका कोई न कोई अपराध अवश्य किया है।

अलका—तब आपका जाना निश्चित है?—मेरी प्रार्थना अस्वीकृत हुई ?

चन्द्रधर—डरो मत अलके! तुमने ही तो मुझे इस कामके लिये तय्यार किया है। मैं अपने लक्ष्मीन्द्रका विवाह साधारण कन्यासे नहीं करना चाहता। उसके लिये मुझे दूसरी सावित्री-की जरूरत है।

"जैसी आपकी इच्छा" कहकर अलका अपने शयनागारमें जाकर सो रही।

प्रातःकाल होते ही वेदवल्लभ पुरोहितके साथ महाराज चन्द्रधरने पुत्र-वधूका निर्वाचन करनेके लिये, परदेश गमन किया। उन्होंने पहली रात 'चन्द्रविहार' में बितायी। प्रातःकाल साधारण वेशमें शहरकी सैर करते फिरे। अगले दिन उन्होंने प्रदेशको प्रस्थान किया। वहाँ उन्हें, सामने नदी-तटपर दश पाँच देवविनिन्दित कुछ बालिकाएँ जल-क्रीड़ा करती हुई दिखाई दीं। इन बालिकाओंमें प्रत्येक एक दूसरेसे रूपवती और चञ्चला थी इस समय उनके अङ्गोंमें कोई विशेष अलंकार नहीं था, तथापि उनके रूपकी प्रभासे सारा नदी-तट उज्ज्वल हो रहा था। उनके प्रत्येक अङ्गसे सुन्दरता मानों टपक-टपककर गिर रही थी। महाराज उन सब कन्याओंको देखकर विस्मित हो गये। सोचा, इनमें सभी मेरी पुत्र-वधू होने योग्य है। लेकिन ऐसा रूप तो मैंने जीवन भरमें पृथ्वीपर कहीं भी नहीं देखा। इस स्वाभाविक सौन्दर्य्यके आगे तो स्वर्गका सौन्दर्य्य भी तुच्छ देख पड़ता है।

बालिकाओंमेंसे किसीको इस बातका तनिक भी ध्यान न था, कि दो आदमी उन्हें बहुत देरसे, छिपे-छिपे देख रहे हैं। अतएव वे निःसंकोच होकर भाँति-भाँतिके कौतुक और आलाप कर रही थीं।

हम कह आये हैं, कि उक्त बालिकाओंमेंसे सभी अनुपम रूपवती थीं, किन्तु उन सबसे छोटी बालिका, सौन्दर्य्यमें अन्य बालिकाओंके सौन्दर्य्यको पराजित कर रही थी। नव-यौवनके समागमसे उसका स्वाभाविक सौन्दर्य्य और भी खिल उठा था। उसके नेत्रोंसे, ओठोंसे और बाहु-वक्षादि प्रत्येक अङ्गसे लावण्य, बासन्ती कुसुमोंकी भाँति फूट फूटकर खिल उठा था। महाराज स्नेहपूर्ण दृष्टिसे—भक्ति-विगलित हृदयसे—उसे देखने लगे। देखते-देखते उनके मुखपर सहसा प्रसन्नता देख पड़ने लगी। वे वैद्यवल्लभसे बोले—"गुरो! कन्या रूप-गुणमें लक्ष्मीरूके सर्वथा योग्य देख पड़ती है। परन्तु देखना यही है, कि जिस उद्देश्यको सामने रखकर मैं जगह-जगह मारा मारा फिर रहा हूँ, वह उद्देश्य भी सिद्ध होगा या नहीं।"

वैद्यवल्लभ बोले—"परीक्षा कर देखो।"

"उसके लिये अभी ही इस कन्याके माता-पिता तथा कुल-गौरवका पता लगाना पड़ेगा। देखो, वे सब जल-क्रीड़ा समाप्तकर अब वस्त्र बदलनेके लिये तत्पर जानेका उद्योग कर रही हैं। शायद शीघ्र ही अपने घर जायेंगी। चलो, इनके पीछे-पीछे जाकर ही हम उस कन्याके माता-पिताके नाम और

कुलका पता लगा लें।"

सचमुच ही उक्त बालिकाएँ जल-क्रीड़ा समाप्तकर, कपड़े बदलनेके लिये तटकी ओर अग्रसर हो रही थीं। तटपर एक ओर एक वृद्धा स्त्री आँख मुँदे, भगवान्के नामका जाप कर रही थी। बालिकाओंमेंसे छोटी बालिका सबसे आगे थी। उसने रास्तेमें ध्यान-मग्न वृद्धाको बैठे देख, नम्र वचनोंमें कहा—"मा! हम लोग वस्त्र बदलने जाती हैं। आप तनिक रास्ता छोड़ दें।"

वृद्धाने बालिकाकी बातको नहीं सुना। उसने फिर कहा—"मा! हम लोग वस्त्र बदलने जाती हैं। आप तनिक रास्ता छोड़ दें।"

वृद्धा इस बार भी चुप रही। मानों वह भगवान्के ध्यानमें इतनी मग्न थी, कि उसे बालिकाकी बात सुनाई ही नहीं दी। आखिर बालिका भींगे वस्त्रोंको सिमेटकर नवीन वस्त्रोंकी ओर चली। पीछे-पीछे अन्यान्य बालिकाएँ भी थीं। जाते-जाते सहसा भींगे वस्त्रके दो छींटे वृद्धाके मुँहपर जा पड़े। वृद्धाका ध्यान टूट गया। पूजा अधूरी रह गयी—वह उठ खड़ी हुई।

अब कहाँ जाती है? वृद्धा तमककर सर्पिणीकी भाँति फूफकार मार गर्ज्जती हुई बोली—"क्या बनियेकी लड़कीको इतनी स्पर्द्धा! देवता और ब्राह्मणका तनिक भी मान नहीं! अच्छा ठहर, मैं तुझे इस पापका उचित दण्ड दूँगी। जा, तेरा पति विवाहकी रातको सर्पाघातसे मरेगा।"

बिना दोष शापकी भागिनी बनकर कन्याने पीछे फिरकर

ब्राह्मणीकी ओर देखा। सतीत्वके तेजसे कन्याका मुख देव-बालाके मुखकी भाँति कान्ति विकीर्ण करने लगा। आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। ब्राह्मणीकी ओर तिरछी चितवनसे देख, कन्याने ओज-भरे शब्दोंमें कहा—"देवी ! जिस प्रकार बिना अपराध तुमने मुझे शाप दिया है, उसी प्रकार तुम्हें मेरे मृत स्वामीको जीवित करना पड़ेगा। अन्यथा तुम्हारे अबतकके सारे पुण्य नष्ट हो जायँगे—मान और प्रतिष्ठा जाती रहेगी।"

इतना कह कन्याने भींगे वस्त्र उतार नवीन वस्त्र धारण पूर्वक सखियोंके साथ अपने घरकी ओर प्रस्थान किया।

महाराज चन्द्रधर वेदवल्लभके साथ एक स्थानपर खड़े खड़े सारे काण्ड देख रहे थे। ब्राह्मणीकी ओर कन्याका तिरछी चितवनसे देखना, उसके मुखसे अनुपम सतीत्व-तेज और वचनों-से गजबका ओज टपकना उनके हृदयमें घर कर गया। बस, उन्होंने लक्ष्मीन्द्रके पत्नीत्वके लिये इसी बालिकाको चुन लिया।

वेदवल्लभसे कुछ देर सलाहकर, वे कन्याके पीछे-पीछे उसके घर गये और कन्याके पिता-मातासे मिलकर एक दिनके लिये उनका आतिथ्य ग्रहण किया।

आज सवेरे ही घरपर अतिथि आये हैं। वे कलके उपवासी हैं, आज व्रत खोलेंगे। कन्याके पिता राधामोहन अतिथियोंका समुचित आदर-सत्कार करनेके लिये व्याकुल हो उठे। लेकिन चन्द्रधरने एक बड़ी दुरी पख लगायी। उन्होंने अपने पाससे सेठजीको थोड़ेसे उड़द दिये हैं, जो देखनेमें सम्भवतः लोहेके

मालूम होते हैं और कहा है—"इन्हीं उड़दोंकी दाल पकनी चाहिये, अन्यथा मैं व्रत न खोल सकूंगा।"

ऐसा तो कभी "भूतो न भविष्यति"—न हुआ न होगा! खासी पहेली है। गोरखधन्धेसे भी बढ़कर है। आफत आयी जानकर सेठ राधामोहन उन उड़दोंको अपनी पत्नीके पास ले गये। सारी दास्तान सुनकर सभी पसोपेशमें पड़ गये। सोचने लगे, ये अतिथि हैं या पागल? हमसे ऐसा न हो सकेगा।

सेठकी एकमात्र कन्या विपुला पासमें बैठी थी। उसने भी पिता और माताके मुखसे लोहेके उड़दोंकी बात सुनी। सुनकर बोली—"पिता! सोच-फिक्र करनेकी क्या बात है? लाइये, मुझे दीजिये,—ये तो लोहेके उड़द हैं—मैं ईस्पातके उड़दोंको भी सावित्री देवीके प्रतापसे पका देनेकी हिम्मत रखती हूँ।"

पिताने उपेक्षासे हँसकर कन्याके हाथमें लोहेके उड़दोंको दे दिया।

यदि दूसरी लड़की होती, तो मा-बापकी इस बातको हंसकर उड़ा देती। किन्तु विपुला बचपनसे ही अघटन-घटन-पटीयसी थी। इस समय भी वह रसोई घरमें गयी और मिट्टीकी कच्ची हाँड़ीमें गायत्री देवीके पाद-पद्मसे पवित्र हुआ जल छोड़ तथा उड़द डालकर उसने चूल्हेमें कुश-कण्डिका जलाना शुरू कर दिया। साथ ही एक मनसे हाथ जोड़कर सावित्रीसे प्रार्थना करने लगी—"माँ! सुना है, सतियोंमें तुम्हारा नाम सर्वोपरि है। तुमने पतिको जीवित करनेमें असंभव कर दिखाया था, आशा है

सतीत्व कामना करनेवाली अपनी इस दासीके द्वारा आज आप सतीत्वके प्रतापको और भी गौरव दिलायेंगी।"

इसी समय-ध्यानकी अवस्थामें ही विपुलाने देखा, दाल-पात्रपर सहसा एक लाल ज्योति उत्पन्न हुई और उस ज्योतिके मध्य भागमें सावित्री देवी मुस्कुराते मुखसे और नयन-सुखकर नेत्रोंसे उसे देखती हुई हाँडीकी ओर हाथ बढ़ाकर उड़दोंके पक जानेकी सूचना दे रही हैं।

विपुलाने आँखें खोलकर हाँड़ीकी ओर देखा। उसका पानी खद-बद खद-बद कर रहा था। उड़द पक चुके थे। विपुलाने प्रसन्न मनसे माता-पिताको पुकारा। माता-पिता बड़ी उत्सुकतासे रसोई घरमें आये और पुत्रीकी करामात देखकर हैरतमें आ गये। दोनोंने प्रेमसे विपुलाकी पीठपर हाथ फेरा और अनेक आशीर्वाद दिये। साथ ही ऐसी अलौकिक गुण-मयी पुत्रीको पाकर अपनेको परम धन्य माना। अन्तमें राधामोहनने अतिथि-को भोजनके लिये बुला भेजा।

बुलाया पाकर चन्द्रधर और वेदवल्लभ बड़ी उत्सुकताके साथ महलोंमें आये तथा विपुलाके सच्ची सती होनेका प्रमाण पाकर अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने अब अच्छी तरहसे समझ लिया, कि मनोरथ-सिद्धिकी एकमात्र पात्री विपुला ही है। इसीके साथ विवाह होनेसे लक्ष्मीन्द्रकी अकाल मृत्युसे रक्षा हो सकेगी।

यह सोचकर चन्द्रधरने सेठ राधामोहनको अपना सच्चा

परिचय दिया एवं विपुलाके साथ लक्ष्मीन्द्रके विवाहकी बात छेड़ी। महाराज चन्द्रधर कहने लगे—"भाई राधामोहनजी ! आपकी कन्या साक्षात् सावित्रीका अवतार है। मैं इसे अपने पुत्रके लिये वरण करता हूँ। आशा है, आप मेरे इस प्रस्तावको अस्वीकार न करेंगे। मैं महीनोंसे अपने पुत्रके लिये योग्य वधूकी तलाश कर रहा था। आज बड़े प्रयत्नोंसे, बड़े सौभाग्यसे इस कन्या-रत्नकी प्राप्ति हुई है। यदि आप मेरे पुत्रके साथ इस कन्याका विवाह कर देंगे तो इस सम्बन्धसे मेरा और आपका दोनोंका कुल सदा सर्वदाके लिये धन्य हो जायेगा।" राधामोहनने अपनी धर्मपत्नी अरुन्धतीसे परामर्शकर राजाका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और वहींपर वाग्दानकी क्रिया समाप्त की गयी।





षडयंत्र.

१४



"मैं प्राण नहीं चाहती सखी! मैं चाहती हूँ सरल हृदयकी सच्ची प्रीति।"

"जो निर्दयी उस मोहन-प्रीतिका तिरस्कार करे, वह पूर्ण अपराधी है। उससे पूरा-पूरा बदला चुकाना ही दण्ड-नीतिकी पूर्णाहुति है।"

"क्या कहा सखी! प्यारेसे और पूरा-पूरा बदला चुकाना? यह क्यों? वह अपराधी क्यों हुआ? सन्तोष रखो। समय आनेपर स्वयं मान जायेगा। धीरे-धीरे विपुलाको भूलकर मुझे अपना लेगा। फिर इस संसारमें ऐसा कौनसा काम है जिसे अपराध कहा जा सके? प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी इच्छाओंका मालिक है। मेरा अपनी इच्छाओंपर अधिकार है, अतएव उनकी प्रेरणासे मैं लक्ष्मीन्द्रको प्यार करती हूँ और-और लक्ष्मीन्द्र अपनी इच्छाओंका स्वामी है, इसलिये वह उनकी चाहके अनुसार सिवा विपुलाके और किसीको अपने हृदयमें स्थान नहीं देना चाहता। यदि मान लिया जाये कि, मेरी इच्छा पूर्ति न करनेके कारण लक्ष्मीन्द्र मेरा शत्रु है, तब उस शत्रुताके लिये दण्ड देनेका मुझे या तुम्हें क्या अधिकार है?"

"भूल गयीं ? अपने पद, अपने गौरव और अपनी महत्ताको भूल गयीं ? आप कौन हैं ? जिसके सात सहस्र कोश व्यापी भद्रदेशका राज्य, जो कोटि-कोटि प्रजाओंकी एकच्छत्र सम्राज्ञी, अनन्त सैन्य और अपरिमित अजेय सामग्री! वह अपना अपमान करनेवालेको सहजहीमें छोड़ दे ! आश्चर्य्य—अत्यन्त आश्चर्य्यकी बात है !"

"अहहह ! सखी ! तुम प्रेमके माहात्म्यसे अपरिचित हो, इसीसे ऐसा कह रही हो ! जानती हो, गुलाबमें काँटे होते हुए भी लोग उसे क्यों चाहते हैं ? चन्दनमें सर्प होते हुए भी लोग उसके लिये क्यों लालायित रहते हैं? यह केवल प्रेमका प्रताप है। पतंग जानता है, कि अग्निमें दाहिका शक्ति है, इतनेपर भी दीप-सिखापर आसक्त होकर वह अपने आपतकको भूल बैठता एवं उसके रूपपर आत्म-बलि चढ़ा देता है। यह करामात प्रेमकी ही है। प्रेम चाहता है, निःस्वार्थ त्याग। वह हिंसासे परे है—घृणासे अतीत है। तुम्हारे कहनेसे मैं उसकी महिमाको नष्ट न करूँगी। यह मैं मानती हूँ कि, मैं असीम शक्तिशालिनी हूँ। लेकिन उस शक्तिका दुरुपयोग करनेमें तनिक भी लाभ नहीं। मैं तुम्हारी इस दण्ड नीतिको कभी स्वीकार न करूँगी। जबतक ज्ञान है, अपने प्राण-प्यारेको प्रेम द्वारा ही अपना दास बनानेकी चेष्टा करूँगी। अतएव तुम यदि मेरा उपकार करना ही चाहती हो तो एक बार किसी कौशलसे उसे यहाँ ले आओ। मैं उससे प्रार्थना करूँगी, प्रेमकी भिक्षा माँगूँगी। यदि न

मानेगा, तो उसके वियोगमें प्राण दे दूँगी !"

"प्रतिशोध न लोगी ?"

"प्रतिशोध ! नहीं मैना ! कहीं देव-बाला अपने हृदयमें मनुष्योंकी भाँति कपटनाको आश्रय देती है ? हम लोग निश्छल हैं, सरल हैं ! तुम पाताल-लोक-निवासिनी हो । तुम छल, कपट या कुटनीति द्वारा स्वार्थसिद्धि करनेमें कोई बुराई नहीं समझती। पर हमलोगोंके हृदय इन सब बातोंसे घृणा करते हैं। हमारी स्वार्थ-सिद्धिका रास्ता प्रेम, भक्ति और उपकार है। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ, कि तुम साधु-सरल उपायों द्वारा एक बार लक्ष्मीन्द्रको यहाँ ले आओ। मैं उससे स्पष्ट शब्दोंमें अपने मनका भाव प्रकट करूँगी ।"

यक्षराज कुबेरकी कन्या मोहिनी, और नागराज श्रुतवान-की कन्या मैनामें परस्पर सौहार्द्र था। वे कभी-कभी एक दूसरेके यहाँ आकर महीनों रह जाया करती थीं। एक दिन मोहिनी और मैना पुष्पक-विमानमें बैठी हुई आकाश-विहार करती-करती चम्पक नगरमें पद्माके प्रवासमें ठहरीं। वहाँ प्रातः कालके समय चन्द्रधरका एकमात्र षोड़शवर्षीय पुत्र, राजकुमार लक्ष्मीन्द्र, अपने कई एक मित्रोंके साथ खेलता हुआ दिखायी दिया। राजकुमारके कन्दर्प-सम सौन्दर्यको देख दोनोंही उसपर मुग्ध हो गयीं। किन्तु कुबेर-कन्या मोहिनी इस बातको न जान सकी कि मेरी भाँति मैनाको भी राजकुमार भा गये हैं। मैना जरा थी भी चालाक। वह बातों ही बातोंमें दूसरेके मनका

भाव प्रकट कराकर अपना भाव छिपाये रखती थी। यहाँ इस अवसरपर भी मैनाने मोहिनीके मनकी बात पूछ ली और हर प्रकारसे सच्ची सखीकी भाँति उसकी सहायता करनेका भापण करना शुरू कर दिया। पर यह न प्रकट किया, कि मैं भी लक्ष्मीन्द्रको चाहती हूँ। पाठक! उनके उल्लिखित परस्परके वार्तालाप द्वारा हमारे इस कथनका पूरा प्रमाण पा गये होंगे। अस्तु,

ऊपर लिखे परामर्शके हो जानेपर मैना देवलोकसे-"प्रिय-सखीका मनोरथ सिद्ध करनेके लिये" फिर पद्माके आश्रममें आयी एवं माया द्वारा संन्यासिनीका वेश धारणकर, एक दिन प्रातः कालके समय, राजमहलके नीचे बहनेवाली "गुञ्जरी" के तटपर जाकर बैठ गयी।

कुछ ही समय बाद राजकुमार लक्ष्मीन्द्र अपने चार-पाँच मित्रोंके साथ गुञ्जरीमें स्नान करने आये। स्नान करते समय तो उन्होंने इस मायाविनीकी मायापर कुछ लक्ष्य नहीं किया, परन्तु जब यह उनके सामने गयी और वे स्नानान्तमें कपड़े बदलकर लौटने लगे, तब इसने बड़े ही नम्र और मधुर स्वरमें कहा—"राजकुमार! मैं यशोधर ग्रामसे आ रही हूँ। आपके लिये मेरे पास एक सन्देश है। आप उसे एकान्तमें सुनिये।" राजकुमारने पहले यशोधर ग्रामका नाम और फिर सन्देशकी बात सुनकर बड़ी व्यग्रतासे साथियोंको विदा कर दिया। वे संन्यासिनीके साथ गुञ्जरीके एक निराले घाटपर आये। इस एकान्त

स्थानपर आ, संन्यासिनीने कटाक्षपात करते हुए कहा—"कुमार आपने त्रैलोक्य सुन्दरी विपुलाका नाम सुना होगा। मैं उन्हीं की सखी हूँ। कल किसी कारणवश यहाँ आयी थीं, और आपको देखकर वे तुरत मुग्ध हो गयी थीं। मन ही मन आपको अपना पति वना लिया था। कलसे उन्हें न मालूम क्या हो गया है, कि निरन्तर आपका ही नाम रट रही हैं और कह रही हैं कि मेरी सखियोंमेंसे कोई शीघ्र ही उनके दर्शन करा दे, अन्यथा मेरे प्राण चले जायेंगे। मैं उन्हींकी आज्ञासे यहाँ आयी थी। सौभाग्यवश आपसे भेंट हो गयी। यदि आप एक स्त्रीके प्राण बचानेका पुण्य लूटना चाहते हैं, तो अभी मेरे साथ चलिये। मैं रथ लायी हूँ।"

राजकुमार लक्ष्मीन्द्र मायाविनी संन्यासिनीकी मायामें फँस गये। उन्होंने एक बार भी उसकी बातोंपर अविश्वास न किया और बिना किसी तरहका तर्क-वितर्क किये उसके साथ जानेके लिये तैयार हो गये। उन्होंने अपनी यात्राके लिये माता-पितासे आज्ञा प्राप्त करनेका अवसर भी न पाया।

संन्यासिनी कुछ दूरपर खड़े, एक सुन्दर रथके पास पहुँची और राजकुमारके साथ उसमें सवार होकर बातकी बातमें अपने निवासस्थान अक्षपुरमें आ पहुँची।

राजकुमार उस अपरिचित देशको देखकर बड़े घबड़ाये। यह तो यशोधर ग्राम नहीं है। तथापि उन्होंने संन्यासिनीसे कुछ न कहा। संन्यासिनी एक बगीचेके दरवाजेपर रथ खड़ा कर उससे उतरी और लक्ष्मीन्द्रकी दृष्टि बचाकर अदृश्य हो गयी।

लक्ष्मीन्द्रने पीछे फिरकर देखा, तो संन्यासिनी गायव ! वे अकेले ही रथपर बैठे हुए हैं।

अपरिचित देश और अपरिचित वागके दरवाज़ेपर खड़े रथमें बैठे हुए लक्ष्मीन्द्र संन्यासिनीकी वातोंको पहेलियों और कामोंको इन्द्रजालका रूप देने लगे—विपुला कहाँ है ? यशोधर जाना-बूझा स्थान है ; लेकिन इस शहरको तो मैंने पहले कभी नहीं देखा ! क्या यह स्त्री सचमुच मेरी प्राण-प्रतिमा देवी विपुलाकी सखी है ? यदि सचमुच यह उसकी सखी है, तो संन्यासिनीका वेश क्यों धारण कर रखा है ? सम्भव है, संन्यासिनीका वेश इसने अपनेको छिपानेके लिये रख लिया हो पर यहाँपर यह मुझे क्यों लायी है ? लायी है तो अकेला छोड़कर कहाँ चली गयी ? अब मुझसे यहाँ अधिक देरतक नहीं खड़ा रहा जायेगा। वह अपने मनमें इस तरहके तर्क-वितर्क कर ही रहे थे, कि इसी समय सामनेके बागीचेका द्वार अपने आप ही खुल गया। रथके घोड़े विना किसीके परिचालित किये ही बागमें रथको ले गये। लक्ष्मीन्द्रके आश्चर्य्यका अब और भी ठिकाना न रहा। वे चित्र-लिखित मूर्त्तिकी भाँति हो रहे।

रथ एक कुञ्जके पास जाकर खड़ा हो गया; रथ खड़ा होते ही दो अपूर्व सौन्दर्य्यमयी स्त्रियाँ उस कुञ्जके भीतरसे निकलीं एवं राजकुमारकी ओर कटाक्षपात करती हुई कोकिल-कण्ठसे बोलीं—"चलिये महाराज ! इस पथसे हमारी महारानीके पास चलिये। चन्द्रकला ! जाओ, राजकुमारको महारानीके पास ले जाओ।"

लक्ष्मीन्द्र मुँहसे एक भी शब्द न निकाल सके ; बाजीगरसे चलायी कठपुतलीकी भाँति रथसे उतर पड़े और चन्द्रकलाके साथ ही साथ कुञ्जके भीतर चले गये।

कुञ्ज वास्तवमें कुञ्ज नहीं था, वह था एक दरवाजा, जो बाहरी बागीचेसे भीतरके बागमें पहुँचता था, चन्द्रकला राज कुमारको उस द्वारतक ले गयी और बोली—"आप बिना किसी तरहका सङ्कोच किये भीतर चले जाइये, कुछ दूर जानेपर आपको महारानी मैनाके दर्शन हो जायेंगे।"

लक्ष्मीन्द्र सोते थे, जाग पड़े। कौन मैना! विपुला कहाँ है? यह संन्यासिनी ही कहाँ है? क्या मैं ठगा गया?

लक्ष्मीन्द्र संकुचित स्वरसे बोले—"कौन महारानी मैना? इस नगरका नाम क्या है? तुम लोग कौन हो?"

चन्द्रकला मुस्कुराती हुई बोली—"कुमार! यह सब बतानेका हमें हुक्म नहीं है। महारानीका नाम भी मेरे मुखसे धोखेसे निकल गया है।"

राजकुमारको अब और भी आश्चर्य हुआ। वे फिर कठपुतलेकी भाँति बागकी ओर अग्रसर हुए।

भीतर पहुँचकर उन्होंने देखा, एक बड़ा लम्बा-चौड़ा बाग है। उसमें भाँति भाँतिके, मानव-दुर्लभ, स्वर्गके पारिजात समान वृक्षोंकी श्रेणियाँ खड़ी हैं। ऊपर मनको मस्त कर देनेवाले गन्धयुक्त पुष्पोंके भुण्ड लटक रहे हैं। बीच-बीचमें फव्वारे और उनके चारों ओर संगमरमरकी चार कुर्सियाँ बनी हुई

हैं। भीतर घुसते ही लक्ष्मीन्द्रकी दृष्टि उक्त चीजोंपर नहीं गयीं—जानेका उसे अवकाश ही न मिला। उन्होंने देखा, एक कदम्बकी डालको पकड़े बिजली जैसी कान्तिवाली, अपरूप सुन्दरी एक देव-बाला खड़ी है। उसका वेश राज-रानियोंके जैसा, सुन्दरता रति जैसी, कान्ति स्वर्गीय अप्सराओंको भी मात करनेवाली है। उसका स्वरूप देख कुछ देरके लिये लक्ष्मीन्द्र अगली-पिछली सभी घटनाएँ भूल गये। मैं कहा हूँ, यहाँ कैसे और क्यों आया हूँ, यह भी भूल गये। चुम्बकसे आकर्षित हुए लोहेकी तरह उस बालाकी ओर अग्रसर होते गये। एकदम समीप आया देख, बालाने आगे बढ़कर, अपने कमल जैसे कोमल करोंसे उनका हाथ पकड़ लिया। करस्पर्श होते ही लक्ष्मीन्द्र मानों आकाशसे गिर पड़े। लुप्त हुआ ज्ञान लौट आया। अनुभूत हुआ कि, वे इस समय चम्पक-नगरसे बहुत दूर, किसी अज्ञात-अपरिचित देशमें एक संन्यासिनीकी छल-छिद्रमयी बातोंमें फँसकर यहाँ आ पहुँचे हैं। यह कौन देश है? किसका राज्य है? यह सुन्दरी ही कौन है?—लक्ष्मीन्द्रके शरीरमें मानों बिजली दौड़ गयी। वे उस सुन्दरीके पाससे जरा हटकर खड़े हो गये। सुन्दरीने वीणाकी झङ्कारसे भी मधुर स्वरमें कहा—"राज कुमार! दृष्टिभर देखो। त्रैलोक्य सुन्दरी मैना आज अपने प्राणोंके साथ समस्त सर्वस्वको श्रीचरणोंमें समर्पित करनेके लिये आपको इस एकान्तमें लायी है। अब विपुलाको भूल जाओ और देवताओंसे भी अधिक शक्तिशाली; यक्षोंसे अधिक धन-

वान्, नागोंको अपना परम हितैषी समझो।"

लक्ष्मीन्द्रने एक बार ऊपर नजर उठाकर सुन्दरीकी ओर गहरी दृष्टिसे देखा। देखते ही वे फिर चौंक पड़े। कौन? यह तो वही संन्यासिनी है, जिसके साथ मैं अपने राज्यसे यहाँ-तक बिना कुछ कहे सुने चला आया हूँ। लक्ष्मीन्द्र अपना सन्देह दूर करनेके लिये व्यग्रताके साथ बोले—"भद्रे! क्या तुम्हीं वह संन्यासिनी हो जो मुझे मेरी प्राण-प्रिया विपुलाके विपद्ग्रस्त होनेका संवाद देकर यहाँतक ले आयी है?"

मैना फिर मुस्कुराती हुई बोली—"प्राणनाथ! क्या इस अपूर्व स्वरूपको देखकर भी आप अभीतक विपुलाको न भूल सके? आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की? सन्देह निवारणके लिये मैं बताये देती हूँ, कि आपको अपने राज्यसे यहाँतक ले आनेवाली संन्यासिनी मैं ही हूँ। मैं ही विपुलाको दिखानेके बहाने आपको यहाँ ले आयी हूँ। ले आनेका कोई अन्य उद्देश्य नहीं, केवल प्रणयके अभिलाषकी पूर्ति है।"

लक्ष्मीन्द्रने कहा—"भद्रे! क्या तुम्हें यह बात नहीं मालूम कि स्वर्गके देव, यक्ष, किन्नर तथा पातालके नागोंसे मर्त्यनिवासी मानवगण अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते? फिर मैं वाग्-दत्त हो चुका हूँ—मेरे पिता विपुलाके साथ मेरा विवाह करनेकी सारी बातें पक्की कर चुके हैं। हृदय एकको ही और एक ही बार दिया जाता है, मैं विपुलाको छोड़, अब संसारमें किसीको नहीं चाहता। तुम अपनी इस प्रकारकी इच्छासे निराश हो जाओ।"

"नहीं राजकुमार! ऐसी रूखी वात मत कहो! महीनोंसे पुष्ट हुई आशालतापर निराशाका तुषार-पात न करो। मैं तुमसे फिर गोद फैलाकर, चरण-प्रान्तमें बैठकर प्रणयकी भीख मांगती हूँ।"

लक्ष्मीन्द्र बोले—"देवि! अधिक कहने सुननेसे कुछ फल न होगा। आर्य-जातिके मानवोंमें यह एक प्रधान गुण है, कि वे अपने मुँहसे एक बार जिस बातको निकाल देते हैं, उसे प्राण जानेपर भी, सर्वस्व नष्ट हो जानेपर भी, अन्यथा नहीं करते। मुझे सीधे ढङ्गसे जिस प्रकार यहांतक लायी हो, उसी प्रकार मेरे राज्यमें पहुँचा दो।"

सीधी उङ्गलियों घी निकलता न देखकर मैनाने इस बार उग्ररूप धारण किया। "चन्द्रकला!" कहकर एक दासीको पुकारा। दासीके आ जानेपर उसे हुक्म दिया, कि इसी समय धृष्ट राजकुमार अजगर-गुहामें कैद कर दिये जायें। चन्द्रमुखी स्वामिनीकी आज्ञाके अनुसार लक्ष्मीन्द्रका हाथ पकड़कर अजगर गुहाकी ओर ले चली। लक्ष्मीन्द्र सिंहकी भांति पराक्रमी होते हुए भी, उस स्त्रीके हाथमें अपना हाथ जाता देख, बकरी बन गये एवं फिर डोरी द्वारा चलायी कठपुतलीकी भांति उसके साथ-साथ चल दिये।







विपुलाने जबसे अपनी माताके मुखसे यह सुना है, कि आज एक मासले उसके भावी पति लक्ष्मीन्द्र माता-पितासे बिना कुछ पूछे ही एक संन्यासिनीके साथ कहीं चले गये हैं, तबसे उसका मन बड़ा ही खिन्न रहता है। भूख-प्यास जाती रही है, पर माता-पिताके भयसे कुछ न कुछ मुँहमें देना ही पड़ता है। पहलेके जैसा उत्साह पहलेकी जैसी स्फूर्त्ति, अब उसमें नहीं देखी जाती। वह आज कल एकान्त पसन्द करती है। किसीसे बातचीत करना नहीं चाहती नदी-स्नान, पुष्प-चयन आदि खेल पहलेकी भांति अब उसका मन नहीं बहलाते। निरन्तर किसी अज्ञात विषयपर चिन्ता करते रहना और नीरव अश्रु बहाते रहना, यही आज-कल उसके जीवनका व्रत हो गया है।

आज कई दिन बाद विपुला चम्पा, चमेली और चापला—अपनी इन तीन सखियोंके साथ वाटिकामें मन बहलानेके लिये आयी है। उसका मुख निरन्तर चिन्ता करनेसे एकदम पीला पड़

गया है। आँखोंमें वह तेज और अधरोंपर वह रक्तच्छटा नहीं रही है। मुख कान्ति-विहीन हो गया है।

थोड़ी देरतक इधर-उधर घूमकर विपुला थककर एक स्थान-पर बैठ रही। सखियाँ भी पासमें आ बैठीं। कुछ देर विश्राम कर लेनेके बाद चम्पा कुछ चपलता भरे शब्दोंमें विपुलासे बोली—"विपुले! व्यर्थ ही चिन्ताकी आगमें अपने सोनेसी देहको क्यों नष्ट कर रही हो? आर्य्य लक्ष्मीन्द्रको तुम्हारी उतनी चाह नहीं है। यदि वे तुम्हें प्यार करते होते, तो एक अपरिचित संन्या-सिनीके साथ सहसा न चले जाते, मनुष्य जातिमात्र नीरस होती है। तुम वृथा ही अपने शरीरको न गलाओ। सोनेसे रूपको बेकार ही मिट्टी न करो।"

चम्पाके इन चोखे वचन-वाणोंसे विपुला तलमला उठी। पर संकोच और लज्जाने उसे इस अत्याचारका बदला न लेने दिया। वह नीचा मुँहकर चुप हो रही।

इस बार चपलाने कहा—"सखी! यदि मन बहुत ही व्यग्र हो, तो हमें कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे उन्हें, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकोंसे ढूंढ़ लायें। कहीं न कहीं तो उनका पता लगेगा ही।"

"चिन्ता न करो। पता बतानेके लिये ही मैं छद्म-वेशसे तुम-लोगोंके पास आयी हूँ।"

इतना कहती-कहती एक अत्यन्त सुन्दरी बालिका उनके पास आयी। विपुला या उसकी सखियाँ उसे न पहचान सकीं।

उन्होंने आश्चर्यमें आकर कहा—"तुम कौन हो? हम किसकी चिन्ता न करें? तुम किसका पता बताओगी?"

"मैं हूँ, नाग-कन्या चन्द्रकला; श्रुतवान-कन्या रानी मैनाकी सखी। आप आर्य्य लक्ष्मीन्द्रके लिये चिन्ता न करें! वे आज कल हमारी रानीके कारागारमें बन्दी हैं।"

"कारागारमें बन्दी हैं"—इतना सुनते ही विपुलाके मुखसे एक जोरकी चीख निकल पड़ी और वह बेहोश हो गयी। पाठक गण! यहाँ प्रेमिक और प्रेमिकाके प्रेमका सम्बन्ध था। अतः एककी कष्ट-कथा सुनकर दूसरेका दुःखी होना स्वाभाविक ही है।

विपुला- दिव्य तेजोमयी विपुला—को बेहोश होते देख, उसकी सखियाँ शीघ्रतासे निकटवर्त्ती सरोवरसे जल लायीं और धीरे-धीरे उसके मुखपर छींटे देने लगीं। दो-चार बार इसी प्रकार छींटे देनेसे विपुलाको होश हुआ। होश होते ही चित्तकी चञ्चलता और मनकी घबड़ाहट दोनों ही जाती रहीं। स्वस्थ हो जानेपर चन्द्रकलाने, आर्य्य लक्ष्मीन्द्र किस तरह मैनाके-फन्देमें फँसे और मैनाने उन्हें क्यों अपने आप ले जाकर बन्दी किया, आदि सारी बातें विस्तारके साथ सुना दीं।

सारी कथा सुनकर पतिव्रता विपुला इसके लिये एकदम घबड़ा उठी, कि वह किस तरह अभी अपने भावी पतिको प्रतिद्वन्दिनी प्रेमिकाके फन्देसे छुड़ावे। इसके लिये विपुला, चन्द्रकला और विपुलाकी तीनों सखियोंमें देरतक परामर्श हुआ। क्या स्थिर हुआ, यह हम उस समय न जान सके।

अजगर-गुहामें पड़े हुए लक्ष्मीन्द्र जब अधिक देरतक न बैठे रह सके, तब धीरे धीरे उठ खड़े हुए और टहलते टहलते कहने लगे—"खूब धोका खाया! खूब ठगा गया! खूब मायाका शिकार बना! यदि आज धोकेसे बन्दी न होकर, सम्मुख-समरमें बन्दी होता, स्त्रीके हाथों ठगा न जाकर शत्रु द्वारा परास्त हो जाता, तो वैसे कलंकको बात न थी। परन्तु उस दिन जैसी भयानक भूल की, जैसा अनुचित कर्म किया—उसका परिणाम आज असह्य सा हो उठा है। माता-पिता, मेरे एकाएक गायब हो जानेकी बात सुनकर, कैसे विस्मित होंगे। प्राण-प्रिया विपुला यदि सब कथा जान सकी होगी, तो कैसे अनुमान लगा रही होगी। संगी-साथी क्या समझ रहे होंगे?" इन बातोंके मनमें उठते ही लक्ष्मीन्द्रके हृदयमें अशान्तिका सञ्चार हुआ, वे और भी व्यग्र हो उठे। अब क्या किया जाये और क्या नहीं, वे कुछ भी स्थिर न कर सके।

इसी समय अजगर-गुहाके द्वारके लौह-कपाट खुले एवं अपनी दो सखियोंके साथ नागरानी मैना आती देख पड़ी। आकर मैनाने सखियोंको आज्ञा दी, कि लक्ष्मीन्द्रको मेरे पास लाओ। आज्ञानुसार सखियोंने लक्ष्मीन्द्रको मैनाके सामने लाकर खड़ा कर दिया। मैनाने उद्विग्नतासे काँपते हुए हाथोंसे लक्ष्मीन्द्रका हाथ पकड़कर कहा—"प्यारे! क्यों वृथा कष्ट उठाते हो? हठ छोड़ दो और विपुलाको भूलकर इस दासीको हृदयमें स्थान दो।"

लक्ष्मीन्द्रने कहा—"नागरानी! तुम्हारे ये प्रलोभन मेरे ऊपर

कामयाब न होंगे ! मैं जो एक बार मुँहसे निकाल चुका हूँ, प्राण जानेपर भी उसका अन्यथा न करूंगा।"

मैना—क्या तुम्हें प्राणोंका भय नहीं है ?

लक्ष्मीन्द्र—आर्य्य लोग बातके आगे प्राणोंकी तनिक भी परवा नहीं करते।

मैना—लक्ष्मीन्द्र ! मुँहसे कहना और बात है और जब प्राणोंपर आ जाती है, तब उसका निभाना जुदी बात है। देखो याद रखो, यदि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगे, तो मेरी यह चमचमाती हुई कटार तुम्हारा और तुम्हारी प्यारी विपुलाका खून पीकर ही शान्ति पावेगी।

लक्ष्मीन्द्र—कुछ भयकी बात नहीं है। तुम निहत्थोंपर हथियार चलाकर भले ही अपनी पाशविकता चरितार्थ करो पर मैं मानविकताके नियमोंका उल्लङ्घन न करूंगा। याद रखो, यदि तुम मेरा सर्वनाश करनेका प्रयत्न करोगी, तो न्यायकारी परमात्मा तुम्हारा भी सर्वनाश कर पापका समुचित दण्ड देगा।

मैना—धर्म कथा रहने दो। इन व्यर्थकी बातोंको सुनकर मैं अपना समय नष्ट नहीं करना चाहती। तीन दिनका समय और दिया जाता है। इस बीचमें तुम आगा-पीछा विचारकर मेरी बात मान गये, तब तो अच्छा ही है। अन्यथा चौथे दिन तुम्हारे सामने ही पहले विपुलाकी हत्याकर बादको तुम्हें भी यमपुरी भेज दिया जायेगा।

इतना कहकर मैना वहांसे चली गयी। उसके चले जाने

बाद एक और अत्यन्त रूपवती कन्या लक्ष्मीन्द्रकी ओर आती देख पड़ी।

उसने आते ही कहा—मैनाके शिकार! पत्थरकी प्रतिमा-से बने हुए क्या सोच रहे हो? यह नाग-मायाका प्रताप है। इसके फन्देमें आ फँसनेवालेका सहजमें छुटकारा नहीं होता। नाग-कन्याएं क्षण भरमें अपने मोहनमंत्र द्वारा संसारको जीत ले सकती हैं। तुम्हीं बताओ, कभी और भी इस बुरी तरहसे फँसे थे?

लक्ष्मीन्द्र एकाएक बात काटकर बोले—"तुम कौन हो?"

स्त्री लापरवाहीसे बोली—"मैं कौन हूं, यह पूछकर तुम क्या करोगे? मैं कोई गैर नहीं हूँ। मैं तुम्हारी दासियोंमेंसे ही हूं।"

लक्ष्मीन्द्र—स्वर और कुछ सूरत देखनेसे मालूम होता है, कि तुम कोई स्त्री हो।

स्त्री—खूब पहचाना! वास्तवमें मैं स्त्री ही हूं। और तुम—तुम कौन हो, पुरुष या स्त्री?

लक्ष्मीन्द्र—मैं पुरुष हूं।

स्त्री—क्या सचमुच तुम पुरुष हो? नहीं, नहीं; तुम पुरुष नहीं, वरन् एक अनोखे कापुरुष हो।

लक्ष्मीन्द्र उत्तेजित होकर बोले—"क्या कहा? अपरिचिता स्त्री! कापुरुष? सावधान! दुबारा ऐसी बात न कहना।"

स्त्री—तब तुम भी मेरा स्त्री कहकर अपमान न करना।

लक्ष्मीन्द्र—तब क्या तुम स्त्री नहीं हो?

स्त्री—यदि तुम पुरुष हो, तो तुम्हें देखकर मेरा भी मन पुरुष

बननेके लिये चाहता है। सच्चे पुरुष इतने भोले नहीं होते, जो हरएकके बहकावेमें आ जायें। पुरुष हैं तुम्हारे पिता, महाराज चन्द्रधर। तुम तो एक साधारण नाग-कन्याके फेरमें पड़कर सारे होश-हवास गँवा बैठे। परन्तु वे ? वे तो तुम जैसे छै राजकुमार, अनन्त धन-रत्न और अगणित बान्धवोंको गँवाकर भी पहलेके भाँति नम्र नहीं हुए। और तुम ज़रासा कष्ट पड़ते ही अपनी भावी पत्नीका मोह छोड़कर मैनाके साथ भाग खड़े हुए ?

लक्ष्मीन्द्र—सच है स्त्री ! तुम्हारा यह तिरस्कार मेरे कामका उचित पुरस्कार है। छलसे हो या कौशलसे, मैनाके साथ बिना कुछ कहे-सुने, बिना कुछ सोचे-समझे, आकर सचमुच कायरोंके जैसा काम किया है।

स्त्री—ख़ैर; जो हो गया सो हो गया। क्या अब तुम यहांसे छुटकारा पाना चाहते हो ?

लक्ष्मीन्द्र—नहीं।

स्त्री—क्यों ? दूसरोंसे मिले हुए कष्ट क्या इतने मधुर मालूम होते हैं ?

लक्ष्मीन्द्र—एक बार कायर कहलाकर, स्त्रीके अनुग्रहसे छुटकारा पा दुबारा कायर नहीं बनना चाहता।

स्त्री—हः हः हः ! क्या मेरे इतना कहनेसे ही पुरुषसिंह बन गये ! बड़े मज़ेकी बात है। खासी दिल्लगी !

लक्ष्मीन्द्र—दिल्लगी कैसी ?

स्त्री—दिल्लगी ? बापरे ! संसारमें इससे बड़ी दिल्लगी क्या

और कौनसी बात होगी ? क्या तुम स्त्रीके अनुग्रह द्वारा यहाँसे मुक्त होना नहीं चाहते ? बड़े भारी जितेन्द्रिय और वीर पुरुष हो ! क्या तुम्हारी दृष्टिमें स्त्रियाँ पुरुषोंसे नीच हैं, निर्बल हैं ? जानते हो, सर्व शक्तिमान् देवादिदेव महादेव आद्याशक्ति कालीके पैरोंके नीचे पड़े थे !

लक्ष्मीन्द्र—अच्छी तरहसे जानता हूँ ।

स्त्री—जानते हो ? उसका भाव भी समझते हो ?

लक्ष्मीन्द्र—भाव-ताव मैं नहीं जानता। कृपाकर मुझे बता दो ।

स्त्री—बड़ा उच्च भाव है। उस भावका नाम है—महाप्रकृतिके प्रति महापुरुष शिवकी अनुग्रह-भिक्षा ।

लक्ष्मीन्द्र—तब क्या संसारमें पुरुषकी अपेक्षा स्त्री ही श्रेष्ठ है ?

स्त्री—सचमुच स्त्री ही श्रेष्ठ है। स्त्री सारे ब्रह्माण्डकी आराधनीया है। 'नारी' इस शब्दसे ही नरकी सृष्टि हुई है।

लक्ष्मीन्द्र—नहीं, नहीं; मैं तुम्हारे इस विकट पक्षपातको न मानूँ गा। मेरा विश्वास है, नर शब्दसे ही नारी शब्दका विकास हुआ है।

स्त्री—अबोध ! तनिक सोच-समझकर बताओ कि नर आया कहाँसे ? योगमाया, अद्भुत—अनिर्णय प्रपञ्चका आश्रय ग्रहणपूर्वक नारी बनकर नरको उत्पन्न करती है, इसीसे उसे ब्रह्माण्ड-जननी कहा जाता है। अब बताओ, नारी और नर इन दोनों शब्दोंमें सबसे अधिक प्रतिष्ठा किसकी है ?

लक्ष्मीन्द्र—इस तरह तो नारी शब्द ही प्रथम स्थान पाने योग्य है। क्योंकि नारीसे ही नर या ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई है।

स्त्री—अब आये रास्ते पर! इतनी देरमें सिद्धान्तको माना, बस; अब प्रतिवाद करनेकी कुछ जरूरत नहीं। अब आओ, तुम्हारे बन्धन खोल दूँ।

लक्ष्मीन्द्र—ठहरो; पहले एक बातका जवाब दे लो! मैं पूछता हूँ, मेरे छुटकारेसे तुम्हें क्या लाभ होगा?

स्त्री—लाभ-अलाभकी बात मैं कुछ भी नहीं जानती। लेकिन मेरा मन तुम्हें बन्दी अवस्थामें देखना पसन्द नहीं करता, इससे मैं तुम्हें मुक्त करना चाहती हूँ।

लक्ष्मीन्द्र—मनको यह कैसी पसन्द है?

इसका उत्तर ईश्वर ही दे सकता है—इतना कहती-कहती आगन्तुका स्त्री लक्ष्मीन्द्रकी ओर बढ़ी और पास आकर उनके सारे बन्धन खोल डाले।

बन्धन खुल जानेपर लक्ष्मीन्द्रने कहा—"अब मैं क्या करूँ?"

स्त्री—जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाओ।

लक्ष्मीन्द्र—चोरोंकी तरह भाग जाऊँ?

स्त्री—इसमें दोष ही क्या है?

लक्ष्मीन्द्र—तुम्हारे ऊपर जो विपत्ति आयेगी?

स्त्री—आने दो,—इसमें भयकी कौन बात है?

लक्ष्मीन्द्र—आह! कैसा निःस्वार्थ भाव है! अपरिचिता स्त्री! क्या तुम्हारे जीवनका महाव्रत केवल परोपकार करना ही

है ? क्या तुम इस मर्त्यधामकी रहनेवाली नहीं हो ? धन्य है तुम्हें, पर रमणी-कुल-धन्या सुन्दरी ! मैं तुम जैसी अपनी परम हितैषिणी देव-बालाको विपत्तिके गढ़ेमें ढकेलकर स्वयं आत्मरक्षा नहीं चाहा। आर्य्यलोग इतने अधम—इतने कृतघ्न—नहीं होते। तुम्हारे लोकातीत परोपकार महामन्त्रने मुझे एकदम मोह लिया है। मैं प्राणोंकी आहुति देकर पहले तुम्हारी रक्षा करूँगा, बादको अपनी रक्षा करूँगा।

स्त्री—जाओ कुमार ! तुमसे अधिक मेरा मूल्य नहीं है। तुम मेरे सर्वस्व धन लक्ष्मीन्द्र हो, मैं तुम्हारी जीवनसंगिनी विपुला हूँ। बस, यही मेरा सच्चा परिचय है। मेरे लिये फिक्र न करो। मैं निरापद् हूँ ; मैनाका वार मेरे ऊपर न चलेगा। अधिक समय नहीं हैं ; जाओ, अति शीघ्र बाहर चले जाओ। दरवाजेपर घोड़ा तय्यार खड़ा है; वह तुम्हें सीधा चम्पक नगर पहुँचा देगा।








क्ष्मीन्द्र आज चम्पक नगरमें लौट आये हैं, उनके सहसा चले आने और दो रोज गायब रहनेके कारण राज-परिवारके साथ सारा चम्पक नगर चिन्तित हो उठा था; चारों ओर दूत दौड़ा दिये गये थे। तीसरे दिन प्रातः काल होते ही लक्ष्मीन्द्र अपनी राजधानीमें आ पहुंचे, राजकुमारको सानन्द और सकुशल आया देख, माता-पिता और परिजन सबके आनन्दकी सीमा न रही। सर्वत्र आनन्दके बधावे बजने लगे; खुशियोंके फव्वारे छूटने लगे।

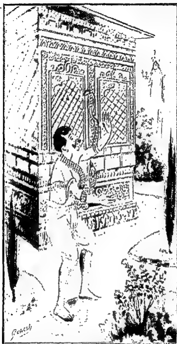
महाराज चन्द्रधरने एक द्रुतगामी दूत द्वारा यशोधरके, अपने सम्बन्धी सेठ राधामोहनके पास भी राजकुमारके मिल जानेका संवाद कहला भेजा। साथ ही विवाहकी तैयारियाँ करनेकी बात भी कहला भेजी।

अपने आपको तो यह धुन ही समायी हुई थी! चन्द्रधरने बातकी बातमें कुछ ही समयमें, विवाहकी सारी तय्यारियां अपने देखते-देखते करा डालीं। सामान्य तय्यारियोंसे निपटकर वे

अब उन तय्यारियोंका सम्पादन करने लगे, जिनके बूतेपर उन्हें विधिके विधानोंसे युद्ध करना था।

सप्तताल नामक पर्वतपर एक विशाल लौह-गृह बननेकी व्यवस्था हुई। स्वयं विश्वकर्मा अपने अनेक चतुर कारीगरोंके साथ उस घरको बनानेके लिये निमंत्रित किये गये। हम कह आये हैं, कि उस युगमें महाराज चन्द्रधरका चारों ओर खूब दब-दबा फैला हुआ था। संसारकी समस्त शक्तियाँ उनकी असा-मान्य सामर्थ्यका सम्मान करती थीं। अतएव विश्वकर्माको महाराज चन्द्रधरका निमंत्रण पाते ही सदल-बल चम्पक नगरमें आना पड़ा और आते ही उन्होंने महाराजकी आज्ञाके अनुसार सप्तताल पर्वतपर अभीष्ट लौह-गृह बनाना आरम्भ कर दिया।

लौह-गृह बड़ा ही अद्भुत और अदृष्टपूर्व बना। इसकी हिमालयकी चोटियों जैसी प्रकाण्ड ऊंची-ऊंची-दीवारें, लोहेके किवाड और लोहेकी ही छत बनायी गयी। सप्तताल पर्वतके पत्थरोंको, पत्थरके ही मसालेसे विचित्र कारीगरीके साथ परिखाके रूपमें परिणत किया गया। देखनेमें वह लौहगृह यम-पुरीके कारागारकी भाँति मालूम होता था। उसमें सिंहद्वारके और किसी स्थानसे प्रवेश करनेके लिये बाल भर भी जगह नहीं थी। साथ ही घरके चारों ओर सर्प-विनाशक जड़ी-बूटियोंके पेड लगाये गये थे, कि जिनकी गन्ध पाते ही सर्पगण सौ-सौ कोसतक न ठहर सकं। उन वृक्षोंके बाद, चारों ओर अग्नि-कुण्ड



सर्प-बन्धन।

"विश्वकर्म्मा! यदि रक्षा चाहते हो, तो जिस तरह भी हो चन्द्रधरके लौह-गृहमें अधिक नहीं, केवल एक बालभरका छेद अवश्य बनाना होगा।"

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता] [देखिये—पृष्ठ संख्या १३१

बनाये गये, जिनमें भीषण-प्रलयान्तकारी प्रज्ज्वलित अग्निकी शिखायें उठ रही थीं।

घर बन जानेपर, उसकी रक्षाके लिये सहस्र प्रहरियोंका दिन-रात पहरा तैनात रहने लगा। बहु संख्यक तीखे दाँतवाले नेवलोंको घरके चारों ओर छोड़ दिया गया। वे दिन-रात परिखामें ही रहेंगे। नेवलोंकी श्रेणियोंसे कुछ दूरपर, इन्द्रायुध तुल्य, उन्मुक्त पूँछवाले मोरोंको रखा गया। उनके पैरोंकी अंगुलियां और चोंचें, सर्प पकड़नेके लिये तय्यार रह सप्तताल पर्वतके शरीरमें उगे हुए तृण गुच्छोंको क्षत-विक्षित करती थीं।

पद्मादेवी आकाशसे, उस दृढ़-रक्षित पर्वत-दुर्गको देखकर घोर चिन्तामें पड़ गयी। चन्द्रधरका आयोजन वास्तवमें उसके मान-मर्दनके लिये अचिन्तनीय और अलंघ्य आयोजन है। इस गृहमें उसके सेवक सर्पगण तो एक ओर, स्वयं वह भी लाख सिर पटकनेपर भी, प्रवेश न कर सकेगी। अब वह क्या करे? किस उपायका अवलम्बनकर चन्द्रधरके इस आयोजनको व्यर्थ करे? इत्यादि विचार करते-करते उसका सिर चक्कर खाने लगा।

थोड़ी देर बाद उसे एक उपाय सूझ पड़ा। वह तत्काल विश्वकर्माके निवास-स्थानपर गयी और माया-द्वारा विश्वकर्माको सर्प-बन्धनसे जकड़कर उसके सम्मुख उपस्थित होकर बोली— "विश्वकर्मा! यदि रक्षा चाहते हो, तो जिस तरह भी हो, चन्द्र-

... मान रहा था, कि लक्ष्मीन्द्र

धरके लौह-गृहमें अधिक नहीं, केवल एक बालभरका छेद अवश्य बना दो।"

विश्वकर्मा अपने सम्मुख पद्मा देवीको देख प्रणामकर बोला-"देवि! यह तो आप बड़ी अनुचित बात कह रही हैं। महाराज चन्द्रधरने मुझे उचित वेतन और पुरस्कार देकर विदा कर दिया है। अब मैं औजार लेकर किस बहानेसे उस घरमें जा सकूँगा?"

पद्माने क्रोध-कम्पित कण्ठसे कहा—"तुम्हें जिस तरह भी हो, मेरी आज्ञा पूर्ण करनी पड़ेगी। अन्यथा इसी समय तुम्हें और तुम्हारे परिवारको मृत्यु-पथका पथिक बनना पड़ेगा। संसारमें ऐसा कौन आदमी है; जो पद्माको क्रुद्धकर आत्मरक्षा कर सके?"

आखिर विश्वकर्माको देवीका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। उसने घरको अच्छी तरहसे देखनेके बहाने चुपकेसे लौह-गृहमें एक छोटा सा छेद बना दिया और उसे कोयलेके चूरेसे बन्दकर अपने घर आया। अस्तु,

लौह-गृह बन जानेपर चन्द्रधरने शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त्तमें लक्ष्मीन्द्रका विवाह करनेके लिये सगे-सम्बन्धियोंके साथ यशोधरको प्रस्थान किया। बारातमें आडम्बर और अनुष्ठानोंका अभाव नहीं था। हाथी, घोड़े और रथोंपर सवार सैकड़ों बराती लक्ष्मीन्द्रके पीछे पीछे चले। वर-यात्रियोंकी विचित्र स्वर्ण-खचित पोशाकें, पगड़ियोंकी मणियों और हीरोंके हारोंकी ज्योति

रात्रके समय मानों सूर्य्यकी किरणोंको मात देने लगी। बहुमूल्य मुकुटको मस्तकपर धारणकर, लक्ष्मीन्द्र जैसे ही घरसे बाहर निकला; वैसे ही मुकुट चौखटसे टकराकर जमीनपर गिर पड़ा साथके चोपदारने तत्काल उठाकर उसे वरको पहना दिया। इस अशुभ घटनाको महारानी अलकाने नहीं देखा - अकेले चन्द्रधरने देखा था—इसलिये उसका हृदय भयसे काँप उठा। अस्तु;

तीन हजार सजातीय वणिक्—उनमें प्राय पन्द्रह सौ कुलीन वर-यात्री थे! तीन सौ भाट उस विवाहका मङ्गल-मधुर गान रचकर आगे आगे गाते हुए जा रहे थे। अन्यान्य नौकर चाकर— सेना सामन्तोंकी तो कुछ गिनती ही न थी। वे सब लोग आनन्दसे मतवाले हुए वशोधर ग्रामकी ओर चले। राज-मुक्ताओंकी झालरसे सुशोभित सुवर्ण अम्बारीवाले हाथीपर महाराज चन्द्रधर बैठे हुए थे। मित्र और कुटुम्बियोंकी सवारियाँ उनके चारों ओर थीं। हजारों मशालचियोंका दल उस बरातके पीछे था। इन सबके मध्यभागमें सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन गन्धर्व राजकुमारकी भाँति, लक्ष्मीन्द्र श्याम कर्ण घोड़ेपर सवार था। उसके मस्तकपर मणिमय मुकुट, गलेमें हीरेके हारोंके साथ विचित्र पुष्पोंकी मालाएँ, दूर दूरतक अपनी सुगन्धिसे साथके चलनेवालोंके मनको आमोद प्रदान कर रही थीं। हाथमें शुभ विवाहका कङ्कण, कमरमें कटार और पटका भी विचित्र शोभा प्रदान कर रहा था।

जिस समय यह दल वशोधर ग्राममें पहुँचा, उस समय वहाँ

की सैकड़ों स्त्रियाँ अपने अपने घरोंकी छतोंपर चढ़ बारातकी शोभा निरख रही थीं। लक्ष्मीन्द्रको देख वे परस्परमें कहने लगीं —"अहा रानी विपुलाने वर तो साक्षात् इन्द्र ही पाया है। विपुला भी अपने महलकी अटारीपर सखियोंके साथ खड़ी बारातको देख रही थी। उसने उस समयकी शोभा देख अपनेको परम धन्य माना। यह दुर्लभ दृश्य जीवनमें एक बार, और वह भी कुछ ही घड़ियोंके लिये भाग्यमें बदा है। आह! विवाह भी कैसी शुभ घड़ी है। इस घड़ीके बीतते ही मृत्यु-पर्य्यन्तका जीवन मरु-जीवन कहा गया है। क्योंकि इस दिनके जैसा आनन्द फिर कभी प्राप्त नहीं होता। यहींसे जीवन-पुस्तकका एक ऐसा विचित्र अध्याय आरम्भ होता है; जिसका प्रत्येक क्षण इन्द्रजालकी ग्रन्थियोंसे बँधा होता है। अस्तु,

बारात सम्बन्धीके द्वारपर पहुंची। अरुन्धतीने जामाताका वरण या बागद्वारी की। सुवर्णके दीपकसे लक्ष्मीन्द्रकी आरती की गयी। उपस्थित स्त्रियोंने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे वरका मुख देखा, अरुन्धतीके सात पुत्र थे, उक्त शुभदृष्टिके साथ उसे लक्ष्मीन्द्र अपने आठवें पुत्रसा प्रिय प्रतीत हुआ।

अरुन्धतीका शयनागार बड़ा सुन्दर है। उसके खम्भोंके ऊपर तरह तरहकी कारीगरीसे युक्त मानव-मूर्त्तियाँ बनी हुई हैं। घरमें नृत्यशील मैनाओंका विहारस्थान बना हुआ है। मकानकी छत आकाशस्पर्श करनेवाली है—अतएव उक्त घरको लोग 'उदय तारा' कहते हैं। उदयताराकी छतसे लगी, मणि-मुक्ताओंकी

झालरोंसे हीरोंकी श्रेणियोंसे गुँथे थे अतएव अति विचित्र पुष्प-पल्लव-मण्डित विस्तृत चँदवेके नीचे विवाहकी वेदी बनायी गयी थी। उस चदवेके नीचे, सुवर्णका छत्र लटक रहा था—उसीके नीचे लाल पटका पहने वरवेशी लक्ष्मीन्द्र खड़े हुए थे। वाम भागमें देवी विपुलाके स्वर्णखचित दुपट्टेका छोर उनके पटकेमें बँधा हुआ था। ब्राह्मणोंने मन्त्रोच्चारण किया और अग्निदेवकी पूजा अर्चाके बाद नवग्रह स्तवम् तथा कलश स्थापन हुआ। अन्यान्य क्रियाओंके बाद अग्नि परिक्रमाका समय आया। जीवन भरके लिये पति-पत्नीको बाँध देनेवाले सातों भँवर जैसे ही पूर्ण हुए कि इसी समय एक भयानक काण्ड हुआ। सबके अलक्षित स्थानसे कोई वीणा-विनिन्दित कण्ठसे बोला—"सेठ राधामोहन! सावधान, जान-बूझकर अपनी सौभाग्यवती पुत्रीको वैधव्यके गढ़ेमें न ढकेल। लक्ष्मीन्द्र आज रात भरका मेहमान है। आज आधी रातके समय वह सर्पाघातसे मर जायेगा।" इस आकाश-वाणीके समान अलक्षित भविष्यवाणीको सुनकर सर्वत्र एक भीषण कोलाहल मच गया। अरुन्धती खड़ी थी, सो बैठकर सिरपर दुहत्थड़ मार रोने लगी। उस रुदन ध्वनिको सुनकर राधामोहन घरके भीतर गये। अरुन्धतीने कहा—"नाथ! मैं इस विवाहको नहीं चाहती। आप सम्बन्धी महाराजसे कह दें, कि वे अपने वरके साथ घर लौट जायें।" राधामोहनने भी मन ही मन अपनी पुत्रीकी भविष्य-चिन्ताकर स्त्रीका प्रस्ताव उचित ही समझा। वे बाहर आये और चन्द्रधरसे

हाथ जोड़कर बोले—"महाराज! मैं आपके पुत्रके साथ अपनी कन्याका विवाह न करूँगा। आपका पुत्र आसन्नमृत्यु है। मैं जान-बूझकर अपनी एकमात्र पुत्रीका जीवन नष्ट न करूँगा।"

सम्बन्धीकी इस बातको सुनकर चन्द्रधर बड़े असमंजसमें पड़ गये। वह तथा उनके साथी अनेक बरातियोंने सेठ राधा-मोहनको बहुतेरा समझाया, पर उन्होंने एक न सुनी। आखिर चन्द्रधर सम्बन्धीकी इच्छाके अनुसार घर लौटनेके लिये लाचार हो गये।

उक्त सारे काण्ड देखकर विपुलासे न रहा गया। उसने घूंघटसे छिपे अपने मुखचन्द्रको आवरण-मुक्तकर, माता-पिता और सम्बन्धी-श्वसुरकी लाज भूलकर, तेज-भरे कण्ठसे कहा—"पिताजी! आप जो कुछ कह रहे हैं, वह अब न हो सकेगा। हिन्दू-ललनाकी जिस पतिके साथ अग्निदेवकी सात परिक्रमा हो चुकी है, पाणि-ग्रहण हो चुका है,—वह अब दूसरेका हाथ नहीं पकड़ सकती—दूसरेकी पत्नी नहीं हो सकती। मेरा विवाह आर्य्य लक्ष्मीन्द्रके साथ हो चुका है। वे इसी समय शरीर क्यों न छोड़ दें, पर मैं अब उनका वामांग छोड़कर दूसरेके वामांगमें नहीं जा सकती। भले ही अभी वैवाहिक क्रियाओंकी परिसमाप्ति नहीं हुई है, पर मैं तो इनकी हो चुकी। अब और किसीकी स्त्री कहलाकर कलंककी भागिनी न होऊँगी। फिर आप सोच किस बातका करते हैं? भला तैंतीस कोटि देवताओंमें किसको

ऐसी क्षमता प्राप्त है, जो एक सच्ची सतीके सतीत्वको—पतिव्रताके अखंड्य पातिव्रतको खण्डन कर सके ? आप निश्चिन्त रहिये। आप शीघ्र ही सुनेंगे, कि विपुलाने—आपकी पुत्रीने—अपने मृत पतिको जिला लिया है।"

विपुलाके अद्भुत साहस भरे उक्त भाषणने विवाह-सभाको आश्चर्य और निस्तब्धताके सागरमें निमग्न कर दिया। सभी चुप हो रहे। सभी आँखें फाड़-फाड़कर विपुलाके बाल-सुलभ चपल मुखकी ओर हैरत-भरी निगाहसे देखते रहे। इस लड़कीने क्या कहा? कालके भालपर पदाघात! विधिके विधानोंकी अवहेलना! इस अबूझ छोकरीके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न ही कैसे हुआ? कहीं कथा-कहानियोंकी बात सच्ची होती है? मरा हुआ पति जिला लेगी? असंभव! एकदम असंभव! पर इतना साहस किसमें है, जो बालिकाके वाक्योंका खण्डन कर सके। माता भरुन्धती और पिता राधामोहनने पुत्रीकी बातका प्रतिवाद न किया और विवाहकी शेष क्रियाएँ समाप्त करा दीं।

रात्रि होते न होते चन्द्रधरने पुत्र और पुत्र-वधूको उसी वरवेशमें सावधानीके साथ सन्ताल पर्वतपर पहुँचाया। भीतर सावधानी—बाहर सावधानी—सर्वत्र सावधानीका प्रबन्धकर उस लौह-गृहमें नव-विवाहिता पत्नीके साथ राजकुमार लक्ष्मीन्द्रका शुभ प्रवेश कराया गया। प्रवेश-क्रियाके समाप्त होनेपर महाराज चन्द्रधरने पुत्र-वधूसे कहा—"बेटी! भयकी कोई बात नहीं है। तुम्हारे स्वामीकी एक अशुभ घड़ीको सतर्कताके साथ बितानेके

लिये ही ऐसी व्यवस्था की गयी है। घरके चारों ओर भाँति-भाँतिकी ओषधियोंके वृक्ष लगे हुए हैं। उनके बाद प्रचण्ड लपटवाले बड़े बड़े अग्नि-कुण्ड जल रहे हैं। मकानके चारों ओर प्रायः एक हजार सैनिक, जागरणकर, सारी रात सशस्त्र पहरा देंगे। स्वयं मैं दरवाजेपर बैठकर, रातभर यहाँकी देख-रेख करूँगा। अतएव तुम किसी प्रकारका भय न करना। फिर तुम तो स्वयं सावित्री-का अवतार हो, अशुभ और अमंगल तुम्हारे पास भी नहीं फटक सकेंगे। तुम निश्चिन्त होकर पतिकी रक्षा करो।" इतना कहकर चन्द्रधर घरका दरवाजा बन्द कराकर बाहर चले गये।



काल-रात्रि



जिसके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, वह अपने कावूसे बाहरके काम भी प्राणोंका मोह त्यागकर, करनेके लिये तत्पर हो जाता है। शक्ति सामर्थ्यका बिना ख़्याल किये ही, जो कार्य्य अकरणीय होते हैं, उन्हें भी करनेके लिये तैयार हो जाता है।

मैनाका शिकार भाग गया। किसकी सहायतासे भाग गया, इसका बहुत कुछ चेष्टा करनेपर भी पता न लगा। यदि लगता तो मैना उसीसे बदला चुकाकर अपने मनकी हविश पूरी कर लेती। ईमान भी खोया और कुछ मिला भी नहीं। मोहिनीसे छल भी किया, पर सुफल न फला, बात फूट गयी। मोहिनीको सखीकी सारी कुचेष्टाएँ ज्ञात हो गयीं। एक शिकारके दो शिकारी थे। अब दोनोंमें बिना किसी प्रकारके लाभके शत्रुता हो गयी। असफल-मनोरथ होनेसे मैनाका प्रेम प्रतिहिंसामें परिणत हो गया। उसने मनही मन लक्ष्मीन्द्रको विपुला समेत संसारसे विदाकर देनेकी ठान ली। वह अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अब अपनी माननीया सखी

पद्मासे मिली और अपनी सारी कथा सुनाकर, उससे लक्ष्मीन्द्रका जीवन नाश करनेमें सहायता माँगी।

पद्माको मानों अलभ्य लाभ हो गया। वह तो चाहती ही थी, कि कोई ऐसा नाग मिले, जो सप्ततालके लौह-गृहमें जाकर लक्ष्मीन्द्रको मार, चन्द्रधरके सारे हवाई मन्सूबोंको मेट दे। पर ऐसा कोई मिलता न था। मृत्युपुरीसे भी भीषण, सप्ततालके लौह-गृहका नाम सुनते ही सारे नाग काँप उठते थे। लक्ष्मीन्द्रको काटना तो एक ओर, सर्पविनाशक बूटियोंकी गन्ध, अग्नि-कुण्डों-की लपटें और पहरेदारोंकी तीक्ष्ण नङ्गी तलवारोंका नाम सुनते ही, शक्ति-शालीसे शक्तिशाली, नागोंकी भी नानी मर जाती थी। ऐसी अवस्थामें पद्माको मैना जैसी दुःसाहसी संगिनीके मिल जानेसे भारी प्रसन्नता हुई। उसने नाग-कन्याके प्रस्तावकी हृदयसे प्रशंसा की और यथेष्ट सहायता देनेकी कसम खाकर, उसे लौह-गृहमें जानेका रास्ता बता दिया।

रास्ता मालूम होते ही मैना पद्माके साथ, सप्ततालके लौह-गृहकी ओर चल दी।

* * * *

आइये पाठक! मैना और पद्माके लक्ष्मीन्द्रके पास पहुँचनेसे पहले ही हम और आप वहाँ चलकर देखें, कि वहाँ क्या हो रहा है। वह देखिये, नव-विवाहित दम्पति एक सुन्दर पुष्प-शय्यापर बैठे हुए रसालाप कर रहे हैं।

लक्ष्मीन्द्रने कहा—"विपुले! हमारे नेत्रोंसे दीखनेवाला

यह सारा संसार उन्हींकी विराट् मूर्त्ति है।"

विपुला—तब क्या ब्रह्माण्डकी पूजा करनेसे ही ईश्वर-पूजाका फल मिलता है ?

लक्ष्मीन्द्र—हाँ।

विपुला—नाथ ! इस विषयमें स्त्रियोंका क्या कर्त्तव्य है ? वे किसकी पूजा करें और किसकी न करें ?

लक्ष्मीन्द्र—प्रिये ! इस प्रश्नका ठीक उत्तर देना बड़ा ही कठिन है। हिन्दू-शास्त्रोंके इस विषयमें दो प्रकारसे अर्थ किये जाते हैं; एक तात्पर्य्यकी ओर दृष्टि रखकर और दूसरे गौण-भावको लेकर। तात्पर्य्य आध्यात्मिकताकी ओर ले जाता है और गौण भाव लौकिकताकी ओर। आर्य्य-ऋषि पात्र-भेदसे इन दोनों अर्थोंका वितरण किया करते थे।

विपुला—किस कोटिके आदमी किस अर्थके अधिकारी होते हैं ?

लक्ष्मीन्द्र—प्रिये ! स्त्री और पुरुष इन दोनोंमें जो ज्ञानी है, वही आध्यात्मिक अर्थका अधिकारी है और जो अज्ञान है, उसके लिये लौकिक अर्थ प्रचलित है।

विपुला—नाथ ! मैं नितान्त अज्ञान हूँ, अतएव मैं लौकिक मतको ही पसन्द करती हूँ। कृपाकर लौकिक मतके अनुसार मुझे मेरा कर्त्तव्य बताइये। बताइये, स्त्रियोंको सबसे पहले किसकी पूजा करनी चाहिये ?

लक्ष्मीन्द्र—प्रिये ! तुम अज्ञान नहीं, वरन् ज्ञान और बुद्धिकी

प्रत्यक्ष आधार-स्वरूपा हो। मैं तुम्हें भले प्रकारसे पहचानता हूं! तुम असामान्या रमणी हो; लेकिन तुम आध्यात्मिक मतकी उपेक्षाकर लौकिक मतको क्यों पसन्द करती हो; इसका कारण भी मैं जानता हूँ। आध्यात्मिक मत नीरस है—स्वादहीन है। किन्तु लौकिक मत सरस, मधुर और स्वादमें सुखोत्पत्ति-कारक है!

विपुला—प्रभो! दासीको लौकिक मतके अनुसार कर्त्तव्य वताइये।

लक्ष्मीन्द्र—प्रिये! यह तुम कैसी वात कहती हो! तुम तो सतीत्वकी आदर्श-स्वरूपा हो, मैंने तुम्हें बड़े सौभाग्यसे प्राप्त किया है। मैं अत्यन्त हीन और तुम अत्यन्त उच्च हो।

विपुला—नाथ! क्षमा करो। ऐसी वात न वोलो। दासी समझकर मुझे श्रीचरणोंके समीप स्थान दो। आजकी रात सौभाग्यकी रात है। नारी-जीवनका अपूर्व सम्मिलन-दिन है। ऐसी शुभ घड़ीमें नारीके सुख—पतीके मोक्ष दाता—होकर सेविकाके हृदयमें वेदना उत्पन्न न करो। कहो प्रभो! वताओ परमेष्ट देव! मुझे ईश्वरके स्थानपर किसकी पूजा करनी चाहिये?

लक्ष्मीन्द्र—यदि तुम्हारा इतना आग्रह है तो सुनो, शास्त्रोंने इस विषयमें स्त्रियोंको उपदेश दिया है, प्रत्येक स्त्री उसीकी प्रथम पूजा करे, जिसे वह हृदयसे चाहती है।

विपुला—तव तो नाथ! आपही मेरी पूजाके पात्र हैं। मुझे सवसे पहले आपकी ही पूजा करनी चाहिये। हृदयेश्वर!

यह संसार तरङ्गमय समुद्रके समान है, मैं एक अत्यन्त निर्बोध स्त्री हूँ। प्रत्येक पलमें श्रीचरणरूप नौकासे भ्रष्ट हो जा सकती हूँ। उस समय नाथ! आप अपनी चरण-दासी समझकर मेरी रक्षा करना, लापरवाहीसे डूबने न देना। अपराधोंकी ओर ध्यान न देना।

लक्ष्मीन्द्र—प्रिये! जीवन-सङ्गिनी! इस संसारमें यदि मैं जीवन भर इस बातकी चेष्टा करूँ, कि तुम्हारा कोई अपराध मिले, तो सती! मेरा यह दृढ़ विश्वास है, कि इस विषयमें स्वप्नमें भी परिश्रम सफल न होगा। धर्ममें मलिनता आना सम्भव हो सकता है, दानमें अशान्ति देखी जा सकती है, किन्तु चन्द्र-मुखी! सौन्दर्य-पूर्ण स्वर्गलोकमें, देवी-रूपिणी विपुलामें दोष या अपराध सूक्ष्म-दर्शी स्वयं भगवान भी नहीं देख सकते।

विपुला—नाथ! कान देकर सुनिये, यह गानकी मधुर लहरी कहाँसे आ रही है! क्षण क्षण समीप आ रही है।

लक्ष्मीन्द्र—वाह! कैसा मधुर स्वर है! मन और शरीर एक दम शिथिल हुआ जाता है।

लक्ष्मीन्द्रके इतना कहते न कहते एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री हाथमें वीणा लिये गाती हुई लक्ष्मीन्द्र और विपुलाके पास आ पहुँची। उसे देख राजकुमार फिर बोले—"बड़े आश्चर्यकी बात है, जिस स्थानमें प्रवेशके लिये वायुमात्र भी स्थान नहीं है, वहाँ यह स्त्री कैसे आ गयी?"

राजकुमारके इतना कहते ही आगन्तुक स्त्री लक्ष्मीन्द्रके अति-

समीप आकर बोली—"कुमार! भूल गये? आश्चर्य्यमें आ गये?"

लक्ष्मीन्द्र—आश्चर्य्यमें आनेकी बात ही है। देखो न, इस मकानके प्रायः सभी दरवाजे बन्द हैं। वह सुनो, बाहर पहरेदार लोग एक दूसरेको सावधान करनेके अभिप्रायसे उच्च चीत्कार कर रहे हैं। फिर तुम किस छल—कौनसे मायाबलसे—भीतर आ सकीं?

स्त्री—राजकुमार! आश्चर्य्य न करो। मैं मंत्र-शक्ति द्वारा भीतर आयी हूँ।

लक्ष्मीन्द्र—असंभव! मर्त्यलोककी किसी भी स्त्रीके पास मन्त्र-शक्ति नहीं हो सकती। यदि तुमने मंत्र-शक्ति द्वारा यहाँ प्रवेश किया है तो तुम मानवी नहीं, देवी हो।

स्त्री—नहीं कुमार! मैं देवी नहीं हूँ, यक्ष कन्या हूँ।

"यक्ष कन्या!" शब्द सुनते ही विपुला काँप उठी। वह बोली—"तुम यहाँ क्यों आयी हो?"

यक्ष कन्या—भुवन मोहिनी! वायु हमारा-आसन है, इच्छा हमारी गति है और मन हमारी दृष्टि है। तुम मुझे नहीं पहचान सकतीं। मेरा नाम मोहिनी है। जिस समय कुमार नागरानी मैनाके यहाँ बन्दी थे, उस समय मैंने ही मैनाके पापाचरणको जानकर अलक्षित भावसे उसकी सखी चन्द्रमुखीको तुम्हारे समीप भेजकर उनकी मुक्तिका मार्ग दिखाया था। इस समय भी मैं तुम लोगोंका उपकार करनेके लिये ही यहाँ आयी हूँ। सुनो,

मैना, पद्मा देवीकी सहायता प्राप्तकर अपनी प्रतिहिंसा चरितार्थ करनेके लिये, सर्पिणी बनकर कुमारको डँसनेके लिये आ रही है, तुम कुमारको किसी प्रकार अकेला न छोड़ना और लो, मैं तुम्हें यह पिटारी देती हूँ, इस पिटारीमें सम्मोहिनी शक्ति है, जिस समय तुम्हें कोई साँप कुमारके पास आता देख पड़े, तत्काल इस पिटारीको उसके सम्मुख रख देना। वह इसकी शक्तिसे मोहित हो, स्वयं इसमें बन्द हो जायगा और जबतक तुम उसके समीप रहोगी, वह बाहर न निकल सकेगा। सर्प-रूप-धारिणी मैनाके आनेका समय अब हो गया है। लो, अब मैं जाती हूँ।"

इतना कहकर मोहिनी विपुला और लक्ष्मीन्द्रके देखते-देखते अदृश्य हो गयी।

मोहिनीके अदृश्य होतेही विपुला फिर लक्ष्मीन्द्रसे रसालाप करने लगी। रसालाप करते-करते जब रात्रिके तीन प्रहर बीत गये और चतुर्थ प्रहरका आगमन हुआ, उस समय लक्ष्मीन्द्रने कहा—"प्रिये! न मालूम क्यों, मुझे इस समय बड़ी भूख लग रही है।"

विपुला बड़े असमञ्जसमें पड़ी। क्या करे, क्या न करे! मोहिनी कह गयी है, कि सारी रात—प्रातःकाल होनेतक मैं पतिके पासही बैठी रहूँ, यदि इनके लिये भोजन लेनेके लिये बाहर जाती हूँ, तो असम्भव नहीं, कि मैना अपना काम कर जाये और यदि नहीं जाती हूँ तो ये भूखके मारे सुबहतक तड़फेंगे। विपुला मन ही मन इतना सोच रही थी, कि लक्ष्मीन्द्र

फिर बोले—"प्रिये ! शीघ्रतासे थोड़ा सा भोजन लाओ, अन्यथा मेरे प्राण निकल जायेंगे।"

विपुला अब कोई उपाय न देख, लक्ष्मीन्द्रसे बोली—"देव ! अच्छी बात है, मैं आपके लिये भोजन ले आती हूँ किन्तु आप मेरा अनुरोध मानकर, जबतक मैं न आऊं, तबतक जागते ही रहें, पल-भरको भी आँख न लगायें।"

लक्ष्मीन्द्रने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया। विपुला पतिके लिये भोजन लाने चली गयी।

उस कालरात्रिमें उस समय चारों ओरसे साँय साँयका शब्द सुनायी पड़ रहा था। महाराज चन्द्रधर घरके चारों तरफ घुमते हुए कभी-कभी जो दीर्घ निःश्वास छोड़ते थे, यह शब्द क्या उसी-का है ? सहसा विपुलाने देखा, लौहमयी दीवारके एक कोनेमेंसे रह-रहकर काला मसाला गिर रहा है। कहना न होगा, कि वह मसाला कोयलेका चूरा था। पूरा छेद हो जानेपर उसमेंसे फण फैलाये, एक भीषण सर्प निकला। विपुलाने सोनेके कटोरेमें थोड़ा दूध भरकर उस साँपके सामने रख दिया। साथ ही मोहिनीकी दी हुई सम्मोहिनी पिटारी भी रख दी। साँप दूधके कटोरेकी ओर न गया और स्वयं पिटारीमें जाकर बैठ रहा।

सारी रात भाँति-भाँतिकी दुश्चिन्ता करनेके कारण विपुला बेहद थक गयी थी। बन्दी साँपको एक सुरक्षित स्थानमें रख, विपुला पतिके लिये थालमें भोजन सजाने लगी। इसी समय किसीने अलक्षित भावसे उस सम्मोहिनी पिटारीको खोल दिया।

सती विपुला



सांप फन फैलाकर चुपचाप लक्ष्मीनन्दके शयनागारकी ओर भाग चला।

साँप फण फैलाकर चुपचाप लक्ष्मीन्द्रके शयनागारकी ओर दौड़ चला। इस समय लक्ष्मीन्द्र क्षुधाकी यंत्रणासे निष्कृति पानेके लिये सो गये थे। सोते-सोते उन्होंने एक करवट ली। करवट लेते ही साँपने उनकी पीठमें डँस दिया। लक्ष्मीन्द्र चीख मारकर बोले—"हाय! मरा!"

विपुला इस समय थालीमें भोजन सजाकर पतिके पास आ रही थी। सहसा लक्ष्मीन्द्रकी चीख सुनकर उसके हाथ काँप गये, थाली छूटकर जमीनपर गिर पड़ी। इसकी कुछ परवा न कर, विपुला पतिके पास दौड़ी। शयनागारमें आकर देखा, वही साँप, जिसे वह भोजन सजानेसे पहले सम्मोहिनी पिटारीमें बन्दकर, एक सुरक्षित स्थानमें रख आयी थी, शीघ्रतासे दीवारके एक छेदमेंसे बाहर भागा जा रहा है। विपुलाने लक्ष्मीन्द्रके सिरहाने रखी कटार उठाकर उसे लक्ष्यकर फेंक दी। साँपका आधा धड़ कटकर जमीनपर आ गिरा। अर्द्धमृत साँप बिजलीसा तड़पकर भाग गया।

उस समय पूर्वाकाशमें सूर्योदय हो रहा था। त्रिशूलधारी महादेवकी भाँति उस लौह-गृहके दरवाजेपर सूर्य्य किरणोज्ज्वल-काय महाराज चन्द्रधर हाथमें शस्त्र लेकर चित्रपटकी तरह खड़े हुए थे। रात्रिके साथ विपत्तियोंके व्यतीत हो जानेका स्वप्न देख, राजा और रानी दोनोंका ही मन पुत्र-दर्शनके लिये उत्सुक था, इतनेपर भी हृदय थर-थर काँप रहा था और नेत्र व्यस्तताके साथ चारों ओर किसीकी खोज कर रहे थे।

सतीत्वका बल

१८

इसी समय महारानी अलका लौह-गृहमेंसे अस्फुट रोनेकी ध्वनि आती सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। उन्होंने अपनी संगिनियोंके साथ द्वारपर आघात किया—द्वार खुल गया। विपुलाने कालनागिनका अनुसरण करते हुए दरवाजा खोला था, सो उसे खुला ही छोड़ दिया था।

पतिव्रता विपुला रो रही थी और कह रही थी, कि—

बोलो हा प्रिय नाथ! कान्त! जीवन आधारा।
तुम मेरे सर्वस्व तुम्हारा मुझे सहारा॥
देखो मेरी ओर प्राण मनके अधिकारी।
आज दुखित हो रही तुम्हारी प्राण-प्यारी॥

महारानी अलकाने घरमें प्रवेशकर देखा, कि स्वामीका मस्तक गोदमें रखे आलुलायित-कुन्तला, विपुला बैठी हुई है। वह पहले अस्फुटस्वरमें कुछ कहकर रो रही थी; परन्तु घरमें अपनी सासको आया देख एकदम चुप हो रही। हाँ, साक्षी स्वरूप केवल एक अश्रु-बिन्दु कपोल-पथके मध्य भागमें ही अटक रहा। महारानी अलकाके साथ पड़ोसकी दो-चार स्त्रियाँ

भी थीं। अलका उन सबके आगे आयी और उत्सुकताके साथ पुत्रको स्नेह-भरी दृष्टिसे देखने लगी। किन्तु अपने लालका विवर्ण, विष-जर्जरित मुख-मण्डल देखकर उन्मूलित वृक्षकी भाँति उसी स्थानपर गिर पड़ी।

विपुला इस समय बाह्य-ज्ञान शून्य थी। वह सोच रही थी, स्वामीने जैसे-तैसे तो एक बार उसका अंग स्पर्श किया था, और बड़ी इच्छासे उसके हाथका भोजन माँगा था, किन्तु उसका भाग्य ऐसा खोटा है, कि वह अपने प्यारेकी इच्छा एक बार भी पूर्ण न कर सकी। यह कष्ट उसके हृदयको चूर्ण-विचूर्ण कर रहा था। सासकी साथिनोंने ठीक ही कहा, कि विपुलाका भाग्य ही फूटा हुआ है। यदि ऐसा न होता तो विवाहकी रातको ही उसके स्वामी सर्वदाके लिये उसे न छोड़ जाते। विपुलाकी आँखोंके आँसू आँखें फाड़कर बाहर निकलनेका उद्योग करने लगे। किन्तु विपुलाने उन्हें रोक लिया! केवल एक बार दृष्टि उठाकर उसने देखा कि, प्रौढ़ा-स्नेह-विह्वला, मूर्च्छिता अलका स्वर्गच्युता किन्नरीकी भाँति ज़मीनपर पड़ी है। हाय! ऐसी उदार-हृदया सासकी सेवा करनेका सौभाग्य उसे एक दिन भी तो प्राप्त नहीं हुआ।

विपुलाको आज किसीकी भी लज्जा नहीं है। जिस समय उसके पतिका शव गुज़रीके तटपर दाह करनेके लिये लाया गया, उस समय वह भी उस शवके पीछे-पीछे गयी। लक्ष्मीन्द्रके लिये चन्दनकी चिता तय्यार हुई। विपुला उस

चिताके पास जाकर उपस्थित लोगोंसे बोली—"यदि मेरे स्वामीको जलाया जायेगा, तो मैं इनके साथ ही चितामें प्रवेश करूँगी; किन्तु इनको जलानेकी कुछ आवश्यकता नहीं। यदि मैं सती हूँ —यदि मैंने काय-मनो-वाक्यसे सदा पतिका चिन्तन किया है, तो मेरे पति उसी पातिव्रतके तेजसे जीवित हो उठेंगे।"

उपस्थित लोग विपुलाकी उक्त बातको सुनकर कहने लगे—"विपुला इस समय पतिके शोकसे उद्भ्रान्त हो गयी है। इसकी बातोंपर कोई भी ध्यान न दो। शीघ्रतासे लक्ष्मीन्द्रकी अन्त्येष्टि क्रिया करो।"

विपुला फिर बोली—"आप लोग मेरी बातको प्रलाप न समझें। सचमुच ही मैं अपने देवताको जीवित कर लूँगी। विधवा होकर श्वशुर-गृहमें रहना मेरे लिये मरण है। आपलोग मेरी बातोंपर विश्वास तो करें—उनकी परीक्षा तो लें।"

लक्ष्मीन्द्रके पिता, विपुलाके श्वशुर, महाराज चन्द्रधर अपनी पतोहूकी दृढ़ताका पता उसी समय पा चुके थे, जिस समय वे उसे अपने पुत्रके लिये वरण करने गये थे, इसलिये उन्होंने आगे बढ़कर पतिव्रताके प्रस्तावका अभिनन्दन किया और आदरके साथ पूछा—"देवी मुझसे कहो! तुम क्या चाहती हो?"

विपुलाने भी दृढ़ताके साथ कहा—"और कुछ नहीं। आप एक बेड़ेपर मुझे और मेरे स्वामीके शरीरको स्थापितकर गङ्गा-प्रवाहमें बहा दें। मैं आजसे छै मास बाद अपने स्वामीके साथ आप लोगोंसे आ मिलूँगी। साथ ही आप लोगोंको सत्य

पातिव्रतका परिचय भी मिल जायगा। जिस घरमें मेरे पतिका देहान्त हुआ है, उसका दरवाजा छै मासतक बन्द रहेगा। वह मंगल-पात्रका अन्न जो वह स्वामीके लिये लायी थी, छै मासतक न बिगड़ेगा। एवं छै मास बाद जिस दिन लौह-गृहका द्वार अपने आप ही खुल जाये, दीपक बुझ जाये, उस दिन समझना, वधू आपके पुत्रके साथ घर लौट आयी है।"

उक्त बातोंको विपुलाने इस भाव, ऐसे विश्वास और ऐसे तेज-पूर्ण स्वरसे कहा कि, फिर कोई उसमें मीन-मेष न निकाल सका। चन्द्रधरने तो पहले ही समझ लिया था, कि सतीकी बात त्रिकालमें भी मिथ्या नहीं हो सकती। ऐसी कथायें पूर्वसे ही प्रचलित हैं—और वे सभी सच हैं। पद्मा अबतक मेरे प्रत्येक कार्यको नष्ट करती आयी है। इस सतीके सतीत्वके सामने उसे निश्चय ही हार खानी पड़ेगी। सतियाँ साक्षात् शक्ति-स्वरूपा हैं। वे असंभवको भी संभव कर डालती हैं—इत्यादि सोच-विचारकर महाराज चन्द्रधरने एक अत्यन्त सुन्दर बेड़ा मँगवा दिया।

बेड़ा गुङ्गरीके जलपर तैरने लगा। उपस्थित लोगोंने लक्ष्मीन्द्रके शवको स्नान कराकर उसपर स्थापित कर दिया। अब विपुला रक्तवसन धारणकर, माँगमें सिन्दूर और मस्तकमें लाल चन्दन लगाकर साक्षात् देवी-प्रतिमाकी भांति उस बेड़ेपर जा बैठी। उस समय उसके सती-वेशको देख सभी लोग "हाय! हाय!" करने लगे। पाड़ा-पड़ोसकी स्त्रियां विपुलाका हाथ पकड़, बेड़ेसे उतारनेकी चेष्टा करने लगी। "ऐसी नासमझ

लड़की तो कभी नहीं देखी। बालक, जवान और बूढ़ी—संसारमें जो भी विधवा हो जाती हैं, वे शान्तिके साथ घरमें बैठकर परमात्माका भजन किया करती हैं। मरे हुए पतिको जिलानेका दावा कौन कर सकता है?" इस प्रकार उन लोगोंने आँखोंसे आँसू बहाते-बहाते विपुलाके कमल-नाल-तुल्य कोमल करोंको पकड़कर कितना ही समझाया; किन्तु विपुला केवल पतिकी ओर स्थिर-दृष्टिसे देखती रही। उसने इन बातोंका कोई भी उत्तर नहीं दिया।

शोकसे पागल, धूलि-धूसरिता अलका रोती-रोती गुञ्जरीके तटपर आ, जलमें खड़ी होकर बोली—"अभागिनीने न मालूम किस बुरी घड़ीमें ससुरालमें पैर रखा था जो मेरे घरका एक दाना भी मुँहमें नहीं दिया। चलो बेटी! इस अनहोनी हठको छोड़कर घर चलो। मैं तुम्हें देख-देखकर ही अपने बेटेको भूल जाऊँगी।"—विपुलाने इस बातका भी कुछ जवाब नहीं दिया।

दिनके दश बज चले थे। चम्पक नगरके सारे निवासी विपुलाके अद्भुत साहसकी बात सुनकर, उत्सुकतासे गुञ्जरीके किनारेपर इकट्ठे होने लगे। सबकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे, सभीके गले रुँधे हुए थे। उनमेंसे कोई-कोई कहता था—"रानी! हमें मत त्यागो। यह सच है, कि तुम्हारे स्वामी संसारमें नहीं रहे, किन्तु तुम्हारी सन्तान—हम तो मौजूद हैं। क्योंकि प्रजा सन्तानके समान है। फिर मा होकर, पुत्रोंको कहाँ

छोड़े जाती हो?" अलका ऊँचे स्वरसे रोती हुई बोली—"मेरी सावित्री! देखो मान जाओ। घर चली चलो। बूढ़े सास-ससुरको दुःखपर दुःख न दो।"

एक चम्पक नगर ही नहीं, आस-पासके गाँवोंसे भी लोग-बाग आ-आकर नदी-तटपर इकट्ठे होने लगे। वे लोग आकर देखते कि, स्वामी-शवके पास स्थिर सौदामिनी अर्थात् मूर्त्तिमती बिजलीकी भाँति साध्वी विपुला बैठी हुई है। गुञ्जरीके जलमें एक सुहावना बेड़ा तैर रहा है। लोग कह रहे हैं—"हमने सीता सावित्रीकी बात अभीतक सुनी ही थी—किसीको आँखोंसे देखा नहीं था, पर आज चम्पक नगरकी भावी रानीने हम-लोगोंके नेत्रोंको सफल कर दिया।"

बेड़ा चल पड़ा। विपुलाको विश्वास था, जिस देशमें मृत्यु नहीं है, वह उसी देशमें जाकर अपने स्वामीको जिलायेगी।

शोकोन्मत्ता अलका किसी तरह भी नदी-तट छोड़कर घर जाना नहीं चाहती। बारम्बार जमीनपर पछाड़ें खा-खाकर गिर रही है। विपुला उन्हें देखकर बोली—"मा! लौहगृहके जिस कमरेमें दीपक जल रहा है, उस कमरेको सावधानीके साथ बन्द रखना, ऐसा न हो कि किसी कारणसे दीपक बुझ जाये।" चारों ओरसे सैकड़ों शोकार्त्त नर-नारियाँ विपुलाको पुकारती हुई बारम्बार कहने लगीं—"रानी! तुम्हारा मुँह देख-देखकर हम लोगोंकी छातियाँ फटी जाती हैं। कहना मान जाओ—लौट आओ।"

विपुला हाथ जोड़कर बोली—"आप लोग आशीर्वाद दें, कि देवी सावित्रीके प्रतापसे मैं अपने पतिको पुनः जीवित कर सकूँ।"

देखते-देखते विपुला और लक्ष्मीन्द्रके शवको लिये हुए बेड़ा नदीके प्रवाहमें पड़कर दूर चला गया।

इस महाशोककी बात चारों ओर फैल गयी। अबोध बालिका विपुला अकेली, नाकों और मगरोंसे भरी गुङ्गरीकी तरंगोंपर स्वामीके शवको लिये किसी अनिश्चित प्रदेशको जा रही है, जिसने इस दृश्यको देखा, वही उक्त वाक्य रोते-रोते दूसरे व्यक्तियोंसे कहने लगा, जिसने इस संवादको सुना, वही रो-रोकर व्याकुल हो उठा। चम्पक नगर-निवासी स्त्री-पुरुषोंने गुङ्गरीके जलको पतित-पावनी भगवती भागीरथीके जलसे भी अति पवित्र समझा, उसका आचमन किया। क्योंकि इसी नदीके द्वारा सती-लक्ष्मी स्वर्ग गयी है। साथ ही उन लोगोंने उस नदीकी तीर-मृत्तिकाको पोटलीमें बाँध-बाँधकर अपने-अपने घरोंमें देव-मूर्त्तियोंके समीप स्थान दिया।





महद्-यात्रा।

देखते देखते विपुला और लक्ष्मीन्द्रका बेड़ा नदीके प्रवाहमें पड़कर दूर चला गया।

शोकोन्मत्त सौदागर

१६

महारानी अलका अपने पुत्र लक्ष्मीन्द्र और सतीसी वधू विपुलाका स्मरणकर दिन-रात मूच्छित पड़ी रहने लगीं। महाराज चन्द्रधर भी एकदम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे। उन्होंने अब राज-काज देखना और व्यापार-वाणिज्यका हिसाब—किताब सम्हालनातक बन्द कर दिया। लोग उनकी अवस्था देखकर कहने लगे,—"महाराज चन्द्रधर पागल हो गये हैं। उन्हें पुत्र और पुत्र-वधूके शोकने अधमरा कर दिया है। पहले छहों पुत्रोंका शोक उन्हें जितना विचलित न कर सका था, उतने विचलित वे एकमात्र लक्ष्मीन्द्रके शोकसे हो गये हैं।"

किन्तु सच पूछिये, तो माहाराज पागल नहीं हुए। वे लाल वस्त्र धारणकर, रुद्राक्षकी माला हाथोंमें लेकर, सप्तताल पर्वतके निकटवर्त्ती वनमें घूमा करते हैं। संध्याके समय, जिस वक्त पर्वत-शिखर-निवासी पक्षीगण छिन्न-भिन्न मेघ-पंक्तियोंकी भाँति आकाशमें उड़ते, उस समय मोहोन्मत्त महाराज चन्द्रधर समझते थे कि, वे त्र्यम्बकेश्वरके विशाल जटा-जूट हैं। गुञ्जरी नदीकी तरंगोंके टकरानेके स्थान, सप्तताल पर्वतके पाद-मूलको

देख वे समझते, कि विराट्, नग्नकाय महेश्वरकी जटाओंसे गंगाकी शुभ्र धारा संसारको पवित्र करनेके लिये अवतरण कर रही है। कभी बावलीके भीतर खिले कमलोंको देख वे सोचते कि, शिवके त्रिनेत्र निर्मल जलमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। कभी रात्रिके समय पहाड़की चोटीसे चन्द्रमाकी रेखाको उगता देख, वे जटा-जूट-धारी, चन्द्रचूड़ महेश्वरका भ्रमकर उस पहाड़को असंख्य साष्टांग प्रणाम करते थे। रात्रिके अन्तमें मलिन हुए तारोंकी पंक्तियाँ उस पर्वतकी चोटीको चारों ओरसे घेरकर अपूर्व शोभा विकीर्ण करती थीं। चन्द्रधर उन्हें शिवके गलेमें पड़ी रुद्राक्षकी मालाएँ समझ, अथवा शिवके शरीरपर लगी भस्मके चिह्न मानकर भक्ति-गद्गद् कण्ठसे शंकरकी स्तुति पढ़ने लगते थे। कभी गुञ्जरीके अस्फुट कल-कल नादसे चौंककर वे उसमें शिवके मुखसे निकले ओंकारकी ध्वनिका आभास पाते थे। इस प्रकार उन दिनों वे संसारकी प्रत्येक वस्तुमें परमात्माकी सत्ताको प्रत्यक्ष अनुभवकर हरदम महादेवके ध्यानमें निमग्न रहते थे।

हाँ, कभी-कभी उन्हें इस बातका भी ध्यान आ जाता था, कि 'आजकल मेरा लक्ष्मीन्द्र कहां है?' इस ध्यानको वे कभी शब्दोंमें भी प्रगट कर देते थे। उक्त भावका शब्दों द्वारा प्रकाश जिस समय भी होता, उसी समय उनके हृदयमें गहरी चोट सी लग जाती। अतः और कुछ न कह सकनेके कारण वे केवल एक लम्बा श्वास छोड़, प्राण-भेदी यातनासे छटपटा उठते थे।

मोह-मुग्ध सौदागर उस आर्त्तस्वर और ध्यान निकलनेकी शब्द-कल्पनासे विचलित हो, एक बार अपने घरकी ओर दृष्टि-पात करते। साथही उस समय उनके नेत्रोंसे दो बूंद आँसू भी गिर पड़ते थे।

कभी शिवमूर्त्तिका ध्यान करते समय देखते, कि मानों कोई उन्मादिनी रमणी अपनी किसी प्राण-प्रतिम वस्तुको छातीसे चिपटाये बेड़ेपर चढ़ी नदीमें बह रही है। "यह कौन है?" इसका निर्णय करते करते उन्हें घण्टों बीत जाते, तथापि वह निर्णय नहीं कर पाते थे, कि यह कौन है? आखिर नेत्रोंसे आँसू टप-कने लगते थे। हृदयकी आग आँसुओं द्वारा बुझ जानेपर उन्हें कुछ शान्ति होती और वे आपेमें आकर भगवान् शङ्करकी स्तुति पढ़ने लगते थे। उनके ऊँचे कण्ठसे निकले हुए शब्दसे सारा पहाड़ काँप उठता था। वे कहते—"हे देव! हे नीलकण्ठ! समुद्र मथनेके बाद देव और रक्षोंने, उसमेंसे निकले अमृत, पाञ्च-जन्य शङ्ख, अद्भुत कमल, ऐरावत हस्ती और अमूल्य रत्न-भाण्डार को परस्परमें बाँट लिया, उस महा सम्पत्तिमेंसे हिस्सा देनेके लिये किसीने आपको नहीं पुकारा, किन्तु जब उसमेंसे विश्वका नाश करनेके लिये जहरका घट निकला, तब देव और रक्षोंने आपकी शरण ली। आपने उन्हें आश्वासन दिया और तत्काल उस विषको पानकर संसारको बचा लिया। हे नीलकण्ठ! आपका यह शुभ नाम ही उस अमृत-कथाका साक्षी है।

"महामुनि सुमन्तने जब सुरेश्वरी गङ्गासे कहा, कि हे गङ्गे!

तुम जब रात्रिके समय देवसमाजमें भोजन परोसनेका काम कर रही थीं, उस समय उनकी लोलुपदृष्टि तुम्हारे प्रत्येक अङ्गपर पड़ रही थी, उनकी दूषित दृष्टिसे देखे जानेके कारण ही तुम स्वर्गसे पतित हुई हो, इसलिये मैं तुमको अपने आश्रममें आश्रय न दूँगा।' इस तरह आश्रय-हीना गङ्गा संसार भरके साधु-सज्जनोंके पास हो आयी, पर आश्रयके लिये उन्हें कहीं भी स्थान न मिला। बदनामीसे डरनेवाले देवलोगोंमेंसे किसीको इतना साहस न हुआ, कि बेचारीको अपने यहाँ स्थान दें। उस समय, प्रभो! आपने पागलोंकी भाँति उसके पास आ परम करुणाके साथ गङ्गाको अपने सिरपर धारण कर लिया। यह देख देवता लोग शर्मा गये। संसार विस्मित हो रहा।

"हे नीलकण्ठ! आपने मूर्त्तिमयी समदर्शिताको उत्पन्नकर संसारको, भेद-विभेदकी नीति छोड़ साम्य भाव सिखाया है। वरन् उच्च, गर्वित अतएव आदर करने योग्य चन्दन, कपूर और अगरु आदि वस्तुओंका परित्यागकर घृणित, अशुद्ध और अशुभ चिता-भस्मको शरीरसे मलकर आदर दिया है। आपके पास इतना धन-भाण्डार है, कि उसकी रक्षा यक्षोंके राजा कुवेरको करनी पड़ती है। किन्तु उस धन-भाण्डारके प्रति आप कभी स्वप्नमें भी आँख उठाकर नहीं देखते। युग बीत जाते हैं, किन्तु कभी कुवेरसे हिसाब-किताब नहीं लिया जाता। अन्यान्य देवताओंके वैभवोंका कुछ ठिकाना नहीं, सारा स्वर्ग उज्ज्वल हो रहा है, किन्तु आप भृङ्गी आदि अनुचर, डुण्डे नाँदिये, आदि भयङ्कर

सर्पों को ही—जिनसे समस्त देवगण घृणा करते हैं—प्यार करते हैं। मानों वे आपके प्रियतम मित्र हैं। वे हर समय "ताथेइ-ताथेइ" शब्दसे नृत्य करते हुए आपके साथ घूमा करते हैं। अन्यान्य देवताओंके गलेमें पारिजात पुष्पोंके हार शोभा पाते हैं, किन्तु आपके कण्ठमें विष भरे धतूरेके फूलोंकी माला-ओंको स्थान मिला है। आप चिरानन्दमय हैं। संसारका नाश हो जानेपर भी आपको शोक और चिन्ता नहीं व्यापती। जिस समय संसार ध्वंस होता है, उस समय आप प्रलयकी भेरी बजा-कर ओंकारका निनाद करते हैं। आप सदा शान्त रहते हैं। कामना आपकी कोपदृष्टिसे भस्म हो गयी है। खिले कमलके समान दोनों हाथ जङ्घाओंपर स्थापितकर जिस समय आप समाधि-सागरमें निमग्न होते हैं, उस समय अनन्त युग बीत जाते हैं, पर आप उनकी कुछ भी परवाह नहीं करते और उस कालमें कितने ही ब्रह्मा और कितने ही इन्द्रोंकी उत्पत्ति-विनाश हो चुकती है, तथापि हे अनादि देव! आप एकमात्र ध्रुव-सत्यकी भाँति समाधिमें विराजमान हो रहते हैं।

"क्षुद्र होनेपर भी आपका ही अंश हूँ। मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है, कि न मेरे माता है और न पिता; न आदि है और न अन्त, मेरे कोई पुत्र-कलत्र भी नहीं है। न मैं कभी पैदा हुआ और न कभी मरूँगा। समस्त दिशाएँ मेरे वस्त्र हैं; नाश-में भी मेरा नाश नहीं होता अर्थात् मुझे मृत्यु नहीं व्यापती।

दीखनेवाले पदार्थमात्रसे मेरा कोई सरोकार नहीं। मैं आनन्दमय और सत्यस्वरूप हूँ।"

* * * *

और एक दिन सप्ततात पर्वतपर बैठे हुए महाराज चन्द्रधर इसी तरहकी चिन्ता और विचार कर रहे थे। इस समय संसारके शोक-भोगोंका उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं था। लक्ष्मीन्द्र लौटे या न लौटे—इस समय उन्हें किसीकी कुछ भी परवा नहीं थी। वे शिवके ध्यानमें तन्मय थे और धीरे-धीरे गुनगुना रहे थे—

न मे राग-द्वेषौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्य्य भावः।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्द रूपं शिवोहं शिवोहम॥
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदं न यज्ञं।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोहम्॥
न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेद पिता नैव मे नैव माता च जन्मं।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुनैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोहं शिवोहम्॥

ध्यानसे नेत्र मूँदे, चन्द्रधर इन्द्रियोंको वशमेंकर आत्ममग्न होनेकी चेष्टा करने लगे, किन्तु हृदयके भीतर विपुला और लक्ष्मीन्द्रके लौट आनेकी बात याद आते ही एक अपूर्व प्रसन्नता उथल पड़ी, ध्यान टूट गया। मन वशमें न रहा। विपुला और लक्ष्मीन्द्रकी बात याद आते ही हृदयमें फिर असह्य वेदना उठ खड़ी हुई। वे बैठे-बैठे शिव-गुण गानकी जगह विपुला और पुत्रके मोहमें तन्मय हो रहे।

जिस समय उन्हें पुत्रशोकने विह्वल कर दिया था, जिस

समय वे सांसारिक ज्ञानसे शून्य हो, संसारकी असारताका ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। संसारमें अन्धकारका राज्य स्थापित होनेकी सूचना हो चुकी थी। ऐसे ही समय एक अर्द्धनग्ना, खड्गहस्ता, अपूर्व सुन्दरी रमणी एक भीषणकाय पुरुषके साथ सहसा अवतीर्ण हुई। उसने आते ही बिजलीकी कड़ककी तरह तीव्र कण्ठसे कहा—"सौदागर! सावधान हो जाओ! आज तुम्हारी और पद्माकी शत्रुताका अन्त होगा! मैं अपनी प्रतिहिंसा चरितार्थकर हृदयको शान्त करूँगी। लक्ष्मीन्द्र मेरा शिकार था। वह मेरे वशमें न आया। लाख समझाया, पर उसने मेरी एक भी न मानी। नागलोकमें लाञ्छनाओंकी स्याही मेरे मुखपर पोतकर वह चुपचाप फन्देसे निकल भागा। नागिनीका अपमानकर मानवीको अपनाया। नागिनियाँ इस अपमानको नहीं सह सकतीं। वे अपने एक शत्रुका बदला उसके हजार परिवारवालोंसे लेती हैं। मैं अपना शिकार मार चुकी! आज अपनी सखी पद्मादेवीके शिकार तुमको भी मारकर उसे प्रसन्न करूँगी।"

महाराज चन्द्रधर विस्मय-विमुग्ध भावसे बोले—"तुम कौन हो?"

स्त्री—नागवाला मैना।

चन्द्रधर मैनाका नाम सुनकर क्रोधसे तलमला उठे! वे बोले—"तब क्या मेरे पुत्रको साँप बनकर डसनेवाली पिशाची तू ही है? चाण्डालिन! आज मैं परिवारभ्रष्ट हो जानेपर भी

तुझे पाकर परम प्रसन्न हुआ हूँ। स्त्री-हत्याका पाप होनेपर भी, मैं उसे अपने हाथोंसे कर, पद्माका मान-मर्दन करूँगा।"

मैना—सौदागर! अब भी इतना घमण्ड! अब भी इतना अहंकार!

चन्द्रधर—अरी पगली! किसमें हिम्मत है, जो शिवदुर्गाके वरपुत्र चन्द्रधरके अहङ्कार और गर्वको खण्डित कर सके? तेरी सखी स्वयं पद्मा तो अभीतक मेरे गर्वको चूर्ण ही न कर सकी। जानती है पापिनि! जबतक मेरे हृदय-मन्दिरमें भगवान् शिव और देवी दुर्गाका निवास है, तबतक मेरे इस महागर्वका एक अणु भी खण्डित न होगा।

मैना—मूर्ख सौदागर! जिस दुर्गाका तू इतना घमण्ड किये बैठा है, घर जाकर देख—जिस तरह तूने एक दिन देवी पद्माके मङ्गल-घटको तुड़वाकर फेंकवाया था, उसी प्रकार तेरा बनवाया चण्डीमण्डप और चण्डी घट तुड़वाकर फिंकवा दिया गया है।

चन्द्रधर क्रोध और आश्चर्यके साथ शीघ्रतासे बोले—"क्या कहा भुजङ्गिनि! मेरी माँकी दुर्दशा!"

मैना—हाँ, उसी चण्डीकी दुर्दशा। तेजस्विनी मैनाकी भीम भुजाओंका बल दो भागोंमें बँटकर एक भाग गया है चण्डी मण्डप नष्ट करने और दूसरा भाग आया है, चन्द्रधरका गर्वनाश करने। इन दोनों कार्योंकी समाप्ति ही मेरे जीवनकी उद्देश्य पूर्ति है—इन दोनों उद्देश्योंकी पूर्णाहुति ही भगवती पद्माके लिये अभीष्ट है।

चन्द्रधर—झूठ! झूठ! सर्वथा झूठ! चण्डीका विध्वंस! इतना साहस संसारमें किसे प्राप्त है?

मैना—मुझे! मुझे! चन्द्रधरका स्थापित किया चण्डीघट इस समय एकदम भूमिसात–धूलिसात–हो चुका है।

चन्द्रधर—सावधान पिशाचि! झूठ बोलनेवालेको अपराधमें मृत्यु-दण्ड मिलता है। आत्मरक्षा कर! जय शिव शंकर।

इतना कहकर चन्द्रधरने कमरमें लटकी तलवारको निकाल लिया। उस तलवारकी चमकसे मैनाकी आँखें झँप गयीं। मैना-का साथी, सेनापति भीमकेतु आगे बढ़कर मैनाको बचा, स्वयं सौदागरसे युद्ध करने लगा।



सतीकी साधना

२०

सुधर यशोधर ग्राममें संवाद पहुँचा, कि गुञ्जरी नदीमें सेठ राधामोहनकी लड़की विपुला बेड़ेपर बैठी जा रही है। यद्यपि ग्राम-भरमें यह चर्चा हो रही थी, किन्तु किसीने भयवश अपने जमींदारके यहाँ इस विषयमें एक शब्द भी न निकाला।

एकाएक अरुन्धतीका हृदय अत्यन्त विचलित हो उठा। सवेरे ही एक कौवेने घरकी दीवारपर बैठकर बड़े कर्कश स्वरमें 'काँव-काँव' करना शुरू किया। अरुन्धति मन ही मन विचार करने लगी, कि कौवा ऐसे करुण-स्वरमें किस दुःखकी सूचना कर रहा है। सहसा विपुलाके विवाहके दिन हुई भविष्यवाणीकी बात याद हो आयी। विपुलाका ध्यान आते ही कलेजा काँप उठा। "तो क्या यह कौवा मेरी विपुलाके किसी अमङ्गलकी सूचना कर रहा है?"

उसने तत्काल अपने सातों पुत्रोंको बुलाया और कहा, कि तुम इसी समय घोड़ोंपर सवार होकर अपनी बहिन विपुलाके यहाँ जाओ और उसकी राजी-खुशीकी खबर लाओ। विपुलाको प्राणों-

-से भी अधिक चाहनेवाले, हरिमोहन, राममोहन आदि सातों भाई विविध भेंट और उपहार लेकर, अपने-अपने घोड़ोंपर सवार हो चम्पक नगरकी ओर चल पड़े। ग्रामसे निकलकर, सदर सड़कपर जैसे ही उन्होंने अपने घोड़ोंको छोड़ा, वैसे ही नदी-स्नान करके लौटते हुए सैंकड़ों आदमी एक स्वरसे बोले— "आपकी लाड़ली बहिन सुवर्ण-प्रतिमा विपुला एक शवको गोदमें लिटाये नदीमें बेड़ेपर बही जा रही है।"

इस खबरको सुनते ही सातों भाइयोंके मस्तकपर मानों वज्र-पात हुआ। उन्होंने कुछ दूर आगे बढ़कर देखा, कि सचमुच ही सजलनयना विपुला एक सुन्दर बेड़ेपर बैठी अपने मृत स्वामीके मुखको स्थिर दृष्टिसे देख रही है। बेड़ा नदीकी तरङ्गोंमें पड़ कभी कभी उलटनेका उपक्रम कर बैठता है, परन्तु विपुलाका उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। कई दिनतक उपवास करनेके कारण उसका शरीर कृश हो गया है। शोक और मानसिक चिन्ताने मुखपर उदासीकी गम्भीर छाया डाल दी है। उसके मस्तकपर सिन्दुर-बिन्दु और रक्त-चन्दन अभीतक उसी प्रकार लगा हुआ है। जलके छपाकोंसे भींगा हुआ वस्त्र हवाके झोंके खाकर उड़ रहा है। शवकी गन्ध पाकर कितने ही जल-जीव अपना-अपना मुंह फैलाकर शवको खानेके लिये दौड़ रहे हैं। किन्तु विपुलाके फेंके पानीके छींटोंसे वे दूर भाग जाते हैं। अविरल अश्रुधारासे विपुलाके दोनों कपोल भींग रहे हैं।

राधामोहनके ज्येष्ठ पुत्र, विपुलाके बड़े भाई हरिमोहनने आगे

वढ़, पुकारकर कहा—"वहन! आज तुम्हारी ऐसी दशा किसने की? अभी दो दिन भी नहीं वीते, कि इन्द्र-पुत्री ईराके समान सजा वजाकर तुम्हें पतिके घर भेजा था, फिर तुम्हारी यह दुर्दशा किसने की?"

हरिमोहन और न वोल सके, डीक मारकर रो पड़े। विपुला हृदयको थामकर संक्षेपमें वोली—"भाइयो! विधाताका विधान ही ऐसा प्रवल होता है, मनुष्यमें इतनी ताकत न थी, जो सतीके वलका सामना कर पाता।"

हरिमोहन—तव वहन! वेड़ेको घाटपर लगा लो। हमलोग लक्ष्मीन्द्रकी चिता सजाकर संस्कार कर देंगे। तुम निश्चिन्त होकर हमलोगोंके वीचमें रहना। हम सातों भाई दिन रात तुम्हारा मन वहलाया करेंगे।

विपुला—नहीं भय्या! मेरे भाग्यमें घर रहना नहीं वदा है। यह वेड़ा ही मेरा घर है और जल-जीव ही मेरा मन वहलानेवाले भाई हैं। तुम लोग विना किसी प्रकारका दुःख किये घर जाओ। मैं अव किसीके घर न जाऊँगी।

हरिमोहन—यह क्या कहती हो वहन? हमलोग अपनी सुवर्ण प्रतिमा सी वहनको यों असहाय न छोड़ेंगे।

विपुला—भय्या! तुम्हारी वहिन तो अव आर्य्य लक्ष्मीन्द्रके हाथ विक चुकी है। उसपर तो तुम लोगोंमेंसे किसीका भी अधिकार नहीं रहा। पिताजीने जिसके हाथमें हाथ पकड़ा दिया, इस समय मैं उसीकी हूँ। फिर इस समय पिताके घर

जानेसे मेरी तपस्या भ्रष्ट हो जायेगी। साधनामें सिद्धि न मिलेगी।

हरिमोहन—बहन! अकारण परिश्रम—व्यर्थकी चेष्टा क्यों करती हो?

विपुला—नहीं भय्या! ऐसी बात मत कहो। सूक्ष्म विचारकी दृष्टिसे देखोगे तो परमात्माकी सृष्टि-रचनातक अकारण प्रतीत होगी। मैं और तुम सभी व्यर्थ सिद्ध हो सकते हैं। उस समय विराट् भ्रान्तिके तूफानमें इस संसारके सारे आचार, नियम और पद्धतियाँ बह जायेंगी। वेद और उनकी विधियाँ, धर्म और ईश्वरका अस्तित्वतक अकारण प्रतीत होने लगेगा।

हरिमोहन—मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है। वरन् अकारणसे मेरा अभिप्राय यह है, कि परमात्माके रचे हुए नियमोंके अनुसार मरा हुआ जीव दुबारा जीवित नहीं हो सकता।

विपुला—नहीं भय्या! मैं तुम्हारी अबोध बहन होनेपर भी यह अच्छी तरहसे जानती हूँ, कि करुणामय ईश्वरका इतना कठोर कोई भी नियम न होगा। यदि ऐसा होता, तो देवी सावित्री किसी तरह भी सत्यवान्को जीवित नहीं कर सकती थीं। मालावती किसी तरह भी मृत स्वामीको जीवित नहीं कर सकती थीं।

हरिमोहन—उनकी बात जाने दो बहन! वे मानवी नहीं थीं।

विपुला—भय्या! मानवी और देवियोंमें भेद ही क्या है?

हरिमोहन—भेद यह है, कि जो मानवी हैं, वे शक्ति-हीना हैं। जो देवियाँ हैं, वे शक्तिशालिनी हैं।

विपुला—शक्तिकी हीनता और अधिकता तो कम-भेदसे होती है। यदि मानवियाँ, देवियोंकी भाँति काम करने लग, तो वे ही बादको देवियाँ कही जाने लगें।

हरिमोहन—बहन! तर्क तो बड़ा सच्चा है, पर क्या तुम सावित्रीका अनुकरण कर सकोगी?

विपुला—शपथपूर्वक कह सकती हूँ कि अवश्य आर्य्य लक्ष्मीन्द्रको जिलाकर मैं दूसरी सावित्री बनूँगी। मेरी यह यात्रा खोये हुए रत्नके उद्धारके लिये ही है।

हरिमोहनके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे। कण्ठ रुँध गया। गद्गद् स्वरसे बोले—"धन्य बहन! तुम जैसी सती लक्ष्मी बहनको पाकर वास्तवमें हमलोग परम धन्य हुए। अच्छा, यदि तुम्हारा ऐसा ही संकल्प है, तो जाओ। सिद्धिके लिये प्रयत्न करो। इच्छामय भगवान् तुम्हारी इच्छाको अवश्य पूर्ण करेंगे। माता और पिता तथा हम सब भाई तुम्हारे कल्याणकी ही कामना करते हैं।"

बेड़ा फिर चल दिया। सावित्रीके समान तेजस्विनी देवी विपुला फिर अपने स्वामीके चरणोंमें ध्यान लगाकर अज्ञात देशको चल दी। उस समय उसके विमानको जो कोई भी देखता, वही "यह कौन जाती है? गुञ्जरीके जलमें बेड़ेपर चढ़ी, स्वामीको गोदमें सुलाये यह कौन जाती है?" कहकर आश्चर्य्यमें निमग्न हो रहता था।

प्रिय पाठको! आपने संसारमें अनेकों जीवन-संगिनी सतियों-

को देखा होगा, पर मरण-संगिनी एक भी सती आपके देखनेमें न आयी होगी। अतएव आइये, और इस दिव्य तेजोमयी सतीके चरणोंका दर्शनकर अपने शोक-ताप-दग्ध जीवनको पवित्र बना लीजिये। विधवाके मस्तकपर रक्षित सिन्दूर कैसी शोभा विकीर्ण कर रहा है! नदीका नील जल और प्रभातका बाल-सूर्य उसके सिन्दूर-बिन्दुको उज्ज्वल कर रहा है। यह घोर नदी-जल और रात्रिके अन्धकारमें नक्षत्रकी म्लान ज्योतिसे विपुलाकी देह अद्भुत सतीत्व-कान्ति विकीर्ण कर रही है।



गुज्जरीका विस्तार शतयोजनव्यापी है। उसका मेल स्वर्गको जानेवाली तारिणी नदीके साथ होता है। विपुलाका बेड़ा दो मास बाद तारणीके तटसे लगा। तटपर जाते ही विपुलाने देखा, कि एक संन्यासिनी ताड़ वृक्षके नीचे बैठी स्थिर-दृष्टिसे आकाशकी ओर ताक रही है। विपुला अस्थिमात्र अवशिष्ट पतिके शरीरको गोदीमें उठाकर उस संन्यासिनीके पास गयी। समीप आकर कहा—"देवि! आपका शाप सत्य हुआ न? मैं विवाहकी रात्रिको ही विधवा हो गयी। तुम्हारे कोपने मेरा सर्वनाश कर डाला। मालूम होता है, ईश्वरके यहाँ सच्चा न्याय नहीं होता!"

संन्यासिनीने सामने विपुलाको खड़ी देख, प्यारसे अपने पास बैठाया और पुचकारकर कहा—"विपुले! तुम यहाँतक कैसे आयीं? जिस स्थानपर देवता, यक्ष, रक्ष और नाग लोगोंके सिवा मर्त्यके

मानव किसी प्रकार भी नहीं आ सकते, वहाँ तुम अकेली कैसे आ पहुँची! तुम विधवा हो गयी हो, यह मैंने मोहिनीके मुखसे सुन लिया है। श्रुतवानकी कन्या मैनाने पद्मादेवीकी सहायता प्राप्तकर तुम्हारा सर्वनाश किया है; इत्यादि सारा हाल मोहिनी मुझे सुना चुकी है! खैर, तुम इस कामके लिये ईश्वरको दोषी न ठहराओ। ईश्वर तो सबको कर्मानुसार फल दिया करता है। तुमने अज्ञानसे मेरे पुण्यानुष्ठानको भ्रष्ट किया था, इसलिये मैंने तुम्हें वैधव्य-दुःख-भोगका शाप दिया। अज्ञानसे होनेके कारण तुम अपने अपराधकी दायिनी नहीं हो, इस बातको मैंने बिना जाने ही तुम्हें शाप दे दिया, फलतः मैं भी तुम्हारे शापकी भागिनी बनकर पुण्यानुष्ठानोंसे भ्रष्ट और स्वर्गसे पतित हो यहाँ निवास करती हूँ। तुम साहसकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति हो, सच्ची पतिव्रता हो। आज स्वर्गके सारे देवता पद्मा, मैना और मुझे शत धिक्कार दे रहे हैं। विवाहकी रातको ही वैधव्य! इस घटनासे स्थावर, जङ्गम और चराचर सभी थर-थर काँप रहे हैं। इस तीव्र अपवादसे मुझे भीषण ग्लानि हो रही है। जिस तेज और जिस बलसे मैं अमर थी, मेरा वह तेज जाता रहा, जरा और मृत्यु अपना कराल मुँह फैलाकर ग्रास करनेके लिये दौड़े आ रहे हैं। उसी चिन्तासे व्यस्त होकर मैं आकाशकी ओर ताकती हुई तुम्हारा आह्वान कर रही थी। तुम अपने साहसके भरोसेपर सास-श्वशुर, माता-पिता और भाई-बन्धु सबके अनुरोध-उपरोधोंका प्रत्याख्यानकर यहाँ आ गयीं, अतएव तुम धन्य

हो। तुम्हारा जन्म ही संसारकी स्त्री-जातिमें नव-जागरण, नवीन शक्ति और नवीन स्फूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेके लिये हुआ है। कलिके पापोंसे कलुषित हुए क्षीणप्रभ सतीत्वको पुनः सतेज बनानेके लिये ही तुम इस संसारमें आयी हो। अतः आज उस प्रभावका प्रभात है। इसीसे आज म्लान हुई सारी कमलिनियाँ खिलखिलाकर हँस रही हैं। भारत-सागरके नारी-समाजमें समस्त रक्तवर्ण, नलिनियाँ प्रस्फुटित हो उठी हैं। तुम्हारे हाथोंमें भारतकी स्त्रियोंका छुप्त सम्मान छिपा हुआ है। तुम्हारे पास भारत-महिलाओंका शिरो-भूषण दुर्लभ सतीत्व कोहिनूर है। सचमुच तुम इस कालकी वन्दनीया देवी हो। जिस दिन मैंने तुम्हें शाप दिया था, उसी दिन मैं समझ गयी थी, कि तुम अपने मृत पतिको पुनर्जीवितकर संसारमें महा-सतीके नामसे परिचित होगी। मेरा तेज तुम्हारे तेजसे टक्कर न ले सकेगा। मुझे तुम्हारे बलके आगे हार खानी ही पड़ेगी। सो आज मैं ब्राह्मणी होकर भी तुम्हारी सेवा करनेके लिये तैयार हूँ। तुमने शापके उत्तरमें कहा था, कि मेरे मृत पतिको तुम्हें ही जिलाना होगा। इस समय मैं अपना वह कर्त्तव्य पालन करनेके लिये तैयार हूँ। तुम मेरे उपदेशानुसार काम करो। अवश्य सिद्धि मिलेगी।"

विपुला—मैं तुम्हारी आज्ञाके अनुसार साधना करनेके लिये तय्यार हूँ। बताओ, मा! उस साधनाका योग क्या है?

संन्यासिनी—प्राण-विनिमय।

विपुला—इस योगकी कामना क्या है?

संन्यासिनी—परलोकमें गये अपने रत्नका उद्धार।

विपुला—इस योगके अनुष्ठान या साधनाकी सामग्रियाँ कौन कौन सी हैं?

संन्यासिनी—विश्वास रूप रत्न, निर्भ्रनता रूप खड्ग, पवित्रता रूप आसन और प्रेमरूप चन्दन।

विपुला—ध्यान क्या है?

संन्यासिनी—पति।

विपुला—धारणा क्या है?

संन्यासिनी—मृतपतिके चरणकमल।

विपुला—दान क्या है?

संन्यासिनी—पार्थिव शरीर।

विपुला—योगका आसन कौनसा है?

संन्यासिनी—श्मशान। और सुनो, तुम्हारी इस साधनामें विशेष सहायता मेरी परम प्रिय सखी नेत्री देगी। वह इस योगके साधनमें सिद्धि पा चुकी है। तुम उसीके आश्रममें अपनी तपस्या करना। उसके बताये मार्गपर चलनेसे तुम आसानी-से स्वर्ग पहुँच जाओगी और स्वर्गमें पहुँचते ही तुम्हें पति परमेश्वरकी प्राप्ति हो जायेगी।

विपुला—अच्छा मा! तुम्हारे उपदेशानुसार आज मैं अत्यन्त कठिन मार्गमें पदार्पण कर रही हूँ। जिस पथसे सती सावित्री गयी थी, जिस पथसे जाकर पतिव्रता-शिरोमणि मालावतीने

सिद्धि-लाभ किया था, आज मैं उसी दुर्गम पथपर पादार्पण कर रही हूँ। इस कार्य्यमें मुझे एकमात्र तुम्हारा ही सहारा है। यद्यपि मैं साधनाके सारे काम अपने बलपर ही करूँगी, पर गुरुकी भाँति मार्ग तुम्हें ही दिखलाना होगा। अच्छा; तो अब मैं देवी नेत्रीके पास जाना चाहती हूँ। चलिये, मुझे उनके आश्रमतक पहुँचा आइये।

वृद्धा संन्यासिनी विपुलाको साथ लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दी। सौ कदम आगे जाते ही, एक निर्जन पहाड़ी-प्रदेशमें एक अति पवित्र आश्रम देख पड़ा। विपुला, संन्यासिनी ब्राह्मणी-के साथ उसी आश्रममें गयी। उसने कुछ और आगे बढ़कर देखा, कि एक अति रूपवती स्त्री गलेमें रुद्राक्षकी माला धारण किये ध्यानमग्न अवस्थामें, एक पर्वतशिलापर बैठी है। वह कह रही हैं—"कोटि तीर्थ-यात्राका पुण्य एक बार प्रभुके नामो-च्चारणमें है। जो व्यक्ति प्रसन्न मन, ध्यान, धारणा और धनसे एक बार भी उसका स्मरण करता है, उसे मुक्तिके द्वार स्वरूप चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु वह स्मरण—वह आह्वान—साधारण आह्वान नहीं है, उस आह्वानका स्वर जो जानता है, वही सच्चा जानकार है। एक दिन सच्चा आह्वान देवी द्रौपदीने किया था। किस सौभाग्य, किस पुण्य और कैसी लगनसे द्रौपदीको उस प्रभु-प्रेमकी प्राप्ति हो गयी थी। मुझे तो इसी बातका आश्चर्य्य है! राजरानी द्रौपदी! मैं स्नेह-विहीन शुष्कहृदया एक साधारण स्त्री हूं, कृपाकर बताओ तो,

कि तुम उस महाप्रभुको किस स्वरसे पुकारती थीं, जिससे मुग्ध होकर वे राधिकाके हाथके षड्रस-पूर्ण ग्रासको त्याग तत्काल द्वैतवनमें दौड़ आते थे। मैं वैसे ही आह्वानको सीखना चाहती हूँ, जिसके आकर्षण-प्रभावसे तुम्हारे वृन्दावन-धन, राधामोहन; कृष्णने अपनी प्यारी द्वारिकाको परित्यागकर कौरव-सभामें वस्त्र रूपसे उदय हो तुम्हारी लज्जा रखी थी! बड़ी इच्छा है देवी! कृपाकर इसे पूर्ण करो। हैं! यह क्या! इस समय मेरा बायाँ नेत्र क्यों फड़क रहा है! यह तो शुभ लक्षणकी सूचना है! अच्छा चलूं, वनसे पुष्प चुन लाऊँ।"–

स्त्री सहसा उठी और कुछ आगे बढ़ते ही चौंक पड़ी। बोली–"आज ऐसा भाव क्यों है! मन आप ही आप गद्गद् क्यों हुआ जाता है! आनन्दके आँसू आँखोंको क्यों निकम्मा बना रहे हैं!! ओह! यह किसकी कान्ति है? फूलोंके कुञ्जमें वन-दावा नलकी प्रभा! यह क्या कोई पहेली है?" स्त्री फिर आगे बढ़ी और वृद्धा संन्यासिनीकी ओर ध्यान न दे, विपुलाको देखकर बोली—"आह! कैसी झाँकी देखी! कैसा स्वरूप देखा! संसार दुर्लभ पवित्र कुसुम आज स्वयं रजकिनीके आश्रममें प्रस्फुटित हुआ है। इतने दिनों बाद इस गरीबिनके यहाँ साक्षात् द्रौपदी आयीं। आह! आज कैसा शुभ दिन है! कौन हो देवी?"

विपुलाने रजकिनीको प्रणामकर कहा—"मैं मर्त्यधाम निवासी महाप्रतापी राजा चन्द्रधरकी पुत्र-वधू विपुला हूँ। आपकी सखी इन नित्यमयी संन्यासिनीके साथ आपके दर्शनोंके

लिये यहाँ आयी हूँ। कृपाकर मेरी विपत्तिमें मुझे सहायता दीजिये।

इतना सुनते ही रञ्जिनीका उन्मत्त भाव जाता रहा। वह मन ही मन लज्जित होती हुई अपनी सखी नित्यमयी संन्यासिनी-से गले मिली। बादको तीनोंने आश्रम-कुटीमें प्रवेश किया। प्रवेश करते ही विपुलाको जाग्रतावस्थामें ही एक क्षणस्थायी स्वप्न देख पड़ा। उसे मालूम हुआ, कि एक मोर-मुकुटधारी, श्याम किन्तु अनिर्वचनीय रूपवान् व्यक्ति हाथमें मुरली लिये मधुर मुस्कान, तिरछी चितवनसे उसकी ओर ताक रहा है। विपुलाका मन चञ्चल हो उठा। वह जैसे ही उस प्रिय दृष्टिसे आकर्षित होकर आगे बढ़ी; मालूम हुआ, कि वह मधुर मूर्त्ति और कोई नहीं, स्वयं राजकुमार लक्ष्मीन्द्र हैं। विपुला और भी चञ्चल हुई, वह दौड़कर उनसे लिपटने जाती थी, कि रञ्जिनीने उसे रोक लिया। विपुला रो पड़ी। बोली—"छोड़ो। बड़ी कठिनतासे मिले हैं। मैं उन्हें अपने हृदयसे चिपटाऊँगी। प्राण जा रहे हैं। यह लो, वे भाग गये। रञ्जिनी! क्या तुम्हीं मेरे पतिको चुराकर अपने आश्रममें लायी हो? तब तो मैं भी अब सर्वदा यहीं रहूँगी।"

रञ्जिनी—देवी! शान्त होओ। यह मिथ्या स्वप्न है। माया-मरीचिकाकी भ्रान्ति है। शान्त होकर बैठो। मुझे बताओ, तुमने इस समय क्या देखा?"

विपुला सम्हल गयी। आँखें मींजकर देखा, सामने कुछ

भी नहीं है। नेत्रीके आश्रममें कई एक मोर और मृगछौने इधर उधर घूमकर परस्परमें क्रीड़ा कर रहे हैं।

विपुलाने कहा—"देवि! आपके आश्रममें अद्भुत चमत्कार है। कहिये, तो मैंने यह क्या देखा?"

रजकिनी—"मैं क्या बताऊँ, तुम्हीं बताओ, कि तुमने इस समय क्या देखा?"

विपुला—"मैंने देखा; कि मुझे विश्वपति कृष्ण मधुर मुस्कानसे हँसते हुए अपनी ओर बुला रहे हैं। जैसे ही मैंने उन्हे ध्यानसे देखा, वैसे ही मालूम हुआ, कि वे कृष्ण नहीं, वरन् साक्षात् मेरे पति; आर्य्य लक्ष्मीन्द्र हैं। मैं उनसे मिलने जाती थी, कि आपने मुझे रोक लिया। अब उस स्थानपर मुझे कुछ भी नहीं दिखायी देता। मानों मैंने कोई स्वप्न देखा था।"

नेत्री—यह तुम्हारी सिद्धिकी पूर्व सूचना है। मैंने योग द्वारा तुम्हारी विपत्तिको जान लिया है। वास्तवमें तुम दुखिया हो। पद्मा और मैनाने वास्तवमें तुम्हारे साथ घोर अन्याय किया है। इस अन्यायके शोधका तुम्हें प्रतिविधान मिलेगा। मैंने सुन रखा है, कि तुमने संसारके सामने अपने मृत पतिको जीवित करनेकी प्रतिज्ञा की है। यद्यपि तुम्हारा ज्ञान अल्प है, साधना भी अल्प है, तथापि मैं जानती हूं, कि तुम कौन हो? साथ ही मुझे यह भी मालूम हो चुका है, कि तुम इस अन्धकारमय कलिकालमें, इस महीपर क्यों आयी हो। विपुले! तुम ज्योतिर्मय धामकी, सती-पुञ्ज विराट् महातेज हो। तुम्हारा अवतार

सतीत्वके निर्वाणप्राय तेजको पुनः प्रदीप्त करनेके लिये हुआ है। लेकिन बताओ तो, इस स्वप्नका रहस्य भी कुछ समझमें आया?

विपुला—नहीं।

मैत्री—मेरा विश्वास है, कि तुम पूजाके आध्यात्मिक भावसे घृणा करती हो। विश्वपति भगवानकी साधनाको सिद्ध करनेके लिये ही संसारमें स्त्रियाँ पतिको प्राप्त करती हैं। लौकिक भावसे पतिकी पूजा करके वे अन्तमें आध्यात्मिक भावका अनुसरण करती हुई विश्वपतिको पूजाकर अपने जीवनको सार्थक करती हैं, सम्भवतः इस भावको तुम आदर नहीं देतीं। तुम्हारी इस अपूर्णताको प्रत्यक्ष दिखानेके लिये ही ऐसे स्वप्नके दिखायी देनेका उद्देश है। अब तुम इस आश्रममें रहकर एक मासतक आध्यात्मिक भावसे पतिकी पूजा करो। इससे तुम्हें स्वर्ग प्राप्त होगा और स्वर्ग प्राप्त होते ही तुम अपने पतिको पा जाओगी।

विपुला—धन्य है मातः! तुमने मुझ अबूझपर कृपाकर मेरी मुक्तिका मार्ग दिखा दिया। अब मैं तुम्हारे उपदेशानुसार ही सारे कार्य्य करूँगी।



शिवका उपदेश

२१


युद्धाके बलसे बलवती हुई नागनारी मैनासे, महाराज चन्द्रधर युद्धमें भीषण रूपसे आहत हो गये हैं। साथका एक भी सैनिक नहीं बचा है, अकेले युद्ध-भूमिमें पड़े हुए बूँद भर पानीके लिये तड़प रहे हैं। आहत स्थानोंसे बहनेवाले खूनने शरीरकी सारी नाड़ियोंको शिथिल बना दिया है। उठना या सरकना तो एक ओर, हाथ उठाकर मांसलोलुप गीदड़ोंको भगानातक उनके लिये बड़ा भारी काम है। मृत्युकी विभीषिका, सन्तानके लौटनेकी आशा, अलकाका मोह और विधवा बन्धुओंकी भावी दुर्दशाका ध्यान उनके मनमें भीषण पीड़ा दे रहा है। हे शिव! प्रभो! धर्मकी हठ रखनेवाले, प्राणोंका मोह छोड़कर प्रणका पालन करनेवाले उदार, उन्नतमना, सत्य-भक्तोंकी भक्तिका अन्तिम परिणाम क्या ऐसा ही होता है? धन्य हैं आपकी उदारता और धन्य है आपकी भक्त-वत्सलता!

पुराणकारोंने पद्माको देवी लिखा है। लेकिन उसके मानवी जैसे द्वेष, ईर्षा और परोन्नति-कातरतादि दुर्गुणोंको देखकर लेखक उसे सच्ची, स्वर्गीय देवी कहनेमें हिचकिचाता है; क्योंकि जिसने सहृदयताके साथ हृदयकी परीक्षा न की, उन्नत प्राणोंको

नहीं पहचाना, प्रतिज्ञाके लिये प्राण खोनेवाले व्यक्तिकी दृढ़ताके आगे घुटने न टेके, हमारी समझमें उसे देवता कहना अन्याय है। हमारे मतसे इस युद्धमें पूरा सोलह आना पराजित और चन्द्रधर परिवार, राज्य और प्राण खोकर भी पूर्ण जयी है। वाहरे हृदय! और वाहरे भाव! वास्तवमें यह आख्यान मानविकताके महत्वका उज्ज्वल दृष्टान्त है।

* * * *

प्याससे कराहते-कराहते चन्द्रधरने कहा—"हे देवादि देव! हे चन्द्रनाथ! इस मरणके समय तो अपने इस भक्तको दर्शन दे जाओ।"

इसी समय कहींसे एक अति रूपवान् दशवर्षीय बालक दौड़ता हुआ उनके पास आया और सिरहानेकी ओर खड़ा हो गया! चन्द्रधर बालकके भोले मुख और मधुरकान्तिको देखकर बोले—"बालक! तुम कौन हो?"

बालक—एक ब्राह्मण बालक।

चन्द्रधर—एकाएक इस निर्जन प्रदेशमें अकेले कैसे आ पहुंचे?

बालक—तुमने मुझे पुकारा था न?

चन्द्रधर—मैंने तो अपने चन्द्रनाथको पुकारा था, तुम्हें तो मैं जानता नहीं! फिर पुकारता कैसे?

बालक—क्या खूब! अरे भाई! मेरा ही तो नाम चन्द्रनाथ है। तुमने मुझे ही तो पुकारा था!

चन्द्रधर—नहीं बालक! मैंने तुम्हें नहीं पुकारा। चन्द्रनाथ

आदि विविध नामधारी मेरे एक परकालके गुरु हैं। मैं अपनी इस मरण-अवस्थामें उन्हें ही पुकारता हूँ।

बालक—ओह! समझ गया! क्या तुम्हारे गुरु महाराज-का नाम भी चन्द्रनाथ है?

चन्द्रधर—हाँ बालक, मेरे गुरुका नाम भी चन्द्रनाथ है।

बालक—मालूम होता है, तुम्हारे गुरु कुछ निष्ठुर स्वभाव-के हैं; क्योंकि अपने मृत्युकालमें तुमने उन्हें इतना पुकारा, कि दूरपर रहनेवाला मैं तक उसे सुनकर तुम्हारे पास दौड़ आया, पर उनके कानपर संभवतः जूँ भी न रेंगी होगी।

चन्द्रधर—इसमें उनका दोष नहीं, मेरे स्वरका दोष है।

बालक—खूब कहा! जिस स्वरको सुनकर मैं व्याकुल हो उठा, जिसको मेरे पास रहनेवाले सब लोगोंने सुना, उस स्वरमें दोष! दोष स्वरका नहीं, तुम्हारे गुरुके कानोंका है। अच्छा बताओ तो तुम्हारे गुरु कितनी दूर रहते हैं?

चन्द्रधर—निश्चितरूपमें नहीं बता सकता। अबतकके जीवनमें मैं कभी उनके मकानपर नहीं गया। वे किस लोकमें रहते हैं, इसकी भी कभी खोज नहीं की। सुना है—और सुना है क्या, श्रुति, स्मृति आदि धर्म-शास्त्र कहते हैं, कि त्रिगुरु महाराजका धाम जीवके अति समीप है। किन्तु कहाँ है—इसका पता मुझे अभीतक नहीं मिला।

बालक—झूठी बात है। मनुष्य होकर भी तुम अपने गुरुका घर नहीं जानते! देखो, मैं कितना छोटा बालक हूँ,

तथापि मुझे अपने गुरुका घर अच्छी तरहसे मालूम है। जव कभी श्री हरिका स्मरण आता है, तभी उनके श्री-धाममें पहुँच जाता हूँ।

चन्द्रधर—वाह! कैसा सरल विश्वास है। वालक! दिव्य वालक! अपने विश्वासका थोड़ासा अंश मुझे भी दो। मैं तुम्हारे विश्वासको प्राप्तकर, उसे अपने गुरुके चरणोंमें चढ़ाऊँगा।

वालक—इससे फल क्या पाओगे? भंगेड़ियोंके पास होता ही क्या है? उनके लिये तुम चाहे जितना रोओ, चाहे जितनी प्रार्थना करो, उनके कानपर कभी जूँ भी नहीं रेंगती। वे तो आठों पहर भाँगके नशेमें अलमस्त रहते हैं।

चन्द्रधर—वालक! तुम क्या मेरे गुरुको पहचानते हो?

वालक—पहचानता तो नहीं, पर तुम्हारी वातोंको सुनकर मैंने यह अनुमान किया है, कि वह अवश्य ही कोई नशाखोर है।

चन्द्रधर—वालक! वात तो तुम एकदम सत्य कह रहे हो। मेरे गुरु जिस प्रकार एक ओर अपार दयाके सागर हैं, दूसरी ओर उसी प्रकार भीषण और निर्दय भी हैं। वे शीघ्र सन्तोष–आशुतोष मूर्त्तिसे संसारके जीवोंको विना माँगे कृपाकी राशियोंका दान दिया करते हैं, एवं महारुद्र महाकाल रूपसे अपने भीषण त्रिशूलसे वे विश्व-सृष्टिका संहार भी किया करते हैं।

वालक—तुम्हारे गुरु ऐसे वहुरूपिया हैं! तव तो भाई मेरी भी इच्छा होती है, कि मैं उनसे दोस्ती करूँ। मेल भी खूब होगा!

पड़ेगी भी खूब, क्योंकि मेरा नाम भी चन्द्रनाथ है और उनका नाम भी चन्द्रनाथ !

चन्द्रधर—अबोध बालक ! मेरे चन्द्रनाथके साथ तुम दोस्ती जोड़ोगे ?

बालक—अवश्य।

चन्द्रधर—आह ! कैसा सरल भाव है ! कैसा निर्विकार चित्त है ! मेरे चन्द्रनाथ कौन हैं, संभवतः सरलचित्त, ब्राह्मण-बालक यह नहीं जानता।

बालक—क्या बड़बड़ा रहे हो ? क्या अपने गुरुको बुला रहे हो ! वृथा चेष्टा न करो। उनसे तुम्हारा तनिक भी उपकार न होगा। वह बड़े निष्ठुर और नीच हैं।

चन्द्रधर क्रुद्ध हो उठे। बोले—"क्यों रे धृष्ट बालक ! तू मेरे इष्टदेवको नीच कह रहा है ? जानता है, चन्द्रधर गुरु-निन्दकका मुख स्वप्नमें भी देखना पसन्द नहीं करता।"

बालक—यह लो ! तुम तो नाराज हो गये ! अच्छा मैं अब जाता हूँ। परन्तु तुम चन्द्रनाथका नाम लेकर अपने गुरुको न पुकारना। अन्यथा मैं समझूँगा, कि तुम मुझे ही पुकार रहे हो। समझ गये ?

चन्द्रधर—पागल बालक ! मुझे चन्द्रनाथका नाम लेनेसे मना करते हो ? अरे चन्द्रनाथके नामकी रटना करना ही तो मेरे जीवनका मुख्य धर्म है।

बालक—तब तो भाई ! तुमने मुझे खासे चक्करमें डाल दिया। चन्द्रनाथका नाम सुनते ही मेरे प्राण पुकारनेवालेकी ओर

दौड़ते हैं। मरूँ-जिऊँ या चाहे जहाँ खेलूँ—नाम सुनते ही उसके पास दौड़ा हुआ आऊँगा।

चन्द्रधर—जाओ न भाई! मैं तुम्हें नहीं पुकारूँगा। तुम बालक हो, वृथा इतना कष्ट न उठाना। जाओ-जाओ अपने संगी-साथियोंके साथ खेलो-कूदो।

बालक—मेरे आनेसे कुछ आराम भी पहुँचा?

चन्द्रधर—तुम्हारी बातोंसे पिपासा मिट गयी। शरीरमें बल आ गया। आजसे मैं तुम्हारा अत्यन्त ऋणी रहूँगा।

बालक—क्या इस ऋणसे मुक्त होना चाहते हो?

चन्द्रधर—इस समय हिम्मत नहीं। यह मेरी दुरवस्थाका समय है। यदि भविष्यमें भगवान् शंकरकी कृपासे अवस्था सुधर जाये तब—

बालक—अधिक आवश्यकता नहीं। एक बार 'शिवाय नमः' कहकर एक बिल्व पत्र छोड़ देना। बस सारा ऋण चुक जायेगा।

इतना कहकर बालक अदृश्य हो गया।

चन्द्रधर उसके गायब होनेके ढंग और अन्तिम वाक्यको सुनकर आश्चर्य्यमें आ गये। बोले—"यह बालक कौन था! अकस्मात् कहाँ छिप गया! बड़ा ही अद्भुत बालक था!!"

वाक्य समाप्त होते न होते, राजाके प्रिय मित्र, वैद्यवल्लभ पुरोहित, अपने महाराजकी खोज करते-करते वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखते ही चन्द्रधर व्याकुल होकर बोले—"भाई! अभी-अभी

साक्षात् भगवान् शिव आये थे, पर मैं मोहका पर्दा आँखोंपर पड़ा होनेके कारण उन्हें पहचान न सका।"

वेदवल्लभ—कुछ चिन्ता नहीं। महाभक्त चन्द्रधरके लिये तो भोलानाथ सदा करतलगत हैं। पर अभी संभवतः आपकी परीक्षाओंका अन्त नहीं हुआ है, इसीसे वे आपसे विशेष न बोले होंगे। खैर—

इनकी बात अभी समाप्त न हो पायी थी कि, नागरानी मैना भीषण विकराल वेश बनाये, हाथमें नंगी तलवार लिये, फिर अपने सेनापति भीमकेतुके साथ चन्द्रधरको खोजती हुई वहाँ आ पहुँची।

राजाको जमीनपर गिरा हुआ देख, वह कहने लगी—"सौदागर! पराक्रमी वैश्य! जीवित हो या मर गये? यदि जीवित हो, तो उठो और शत्रुसे युद्ध करो।"

वेदवल्लभ—सावधान! तलवारको म्यानमें करो, स्वर्गमें परम विचारकका आसन है। अधर्मके साथ किसीकी हत्या न करना।

"किसमें इतनी सामर्थ्य है, जो महाप्रतापी, महा शिव-भक्त पुण्यात्मा चन्द्रधरकी हत्या कर सके। मैना! पहले मुझसे युद्ध कर, बादको चन्द्रधरपर हाथ चलाना।"

इतना कहती-कहती त्रिशूलहस्ता, अनुपम सुन्दरी मोहिनी क्रोध-कषायित नेत्रोंसे चिनगारियाँ छोड़ती, मैनाके सामने आ खड़ी हुई। मैना मोहिनीको सामने खड़ी देख, भयसे थर-थर काँपने

लगी। उसके मुँहसे उस समय एक वाक्य भी न निकल सका। मोहिनीने फटकारकर कहा—"चाण्डाली! इतना विश्वासघात! इतनी नारकी प्रतिहिंसा! नागवाला, देववाला और यक्षवाला संसारमें आजतक बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखी जाती थीं, किन्तु तूने जीव-जातिकी एक उत्तम आत्माके साथ नीच भावका प्रणयकर, उसे एकदम भस्मसात् कर दिया। पातिव्रतकी अवहेलनाकर धर्मका उल्लङ्घन किया। नागोंको उच्च, श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित आसनसे गिराकर महा भीषण पाप किया है। एक सरल हृदय मानवने जब तेरे प्रणयकी उपेक्षा की, तब तू उसके प्राणोंको लेकर भी शान्त न हुई! सतीके सतीत्वका सम्मान न कर, उसे वैधव्यकी कलङ्क-कालिमा लगा, अब उसके परिवारतकको नष्ट करनेके लिये उद्यत हो गयी। ऐसा राक्षसी भाव! ऐसी नीच प्रवृत्ति! धिक्कार है! तुझे शतशत धिक्कार है!"

मैना मोहिनीके उक्त मर्मभेदी वाक्योंको सुनकर ग्लानिके स्थानपर क्रोधसे भर उठी। उसने लज्जित होनेके बदले, मोहिनीकी ओर न देख, भीमकेतुको आज्ञा दी, कि वह इसका इसी समय सफाया कर दे। किन्तु न मालूम क्यों—किस तेजके प्रभावसे भीमकेतुका सारा शरीर शिथिल हो गया। उसके हाथकी तलवार एकाएक जमीनपर गिर पड़ी और मूर्च्छा आ जानेसे वह स्वयं भी पृथ्वीपर जा गिरा। मैना चिल्ला उठी—"पद्मा! पद्मा! कहाँ हो? इस प्रलयकी आगसे बचाओ। मैं मरी जाती हूँ।"

मैनाके इतना कहते-कहते अकस्मात् आकाशसे एक दिव्य

प्रकाश उतरा और उसमें भीषणकाय सर्पों के सिंहासनपर बैठी, पद्मा वहां अवतीर्ण हुई। पद्माने आते ही अपने मायाबलके प्रभावसे प्रलयकालके जैसी आँधी चलाकर सर्वत्र अन्धकार कर दिया और उसी अन्धकारमें कालसर्पों की सृष्टिकर उसने चन्द्रधर, वेदवल्लभ, मोहिनी आदि शत्रुओंको नष्ट करनेकी आज्ञा दी।

आज्ञा पाते ही साक्षात् यमोंकी भाँति कालसर्प अपने अपने फणोंको उठाकर, भीषण फुंकारोंसे आग बरसाते हुए, शत्रुओंका नाश करने चले कि, सहसा पानीके एक जबर्दस्त रेलेने उन सबको बहाकर न मालूम कहाँ ले जा पटका। सर्पों के दूर होते ही अन्धकार भी जाता रहा और आकाशसे फिर एक दिव्य ज्योति उतरी। उसमें सिंहवाहिनी, खड्गहस्ता, चण्ड-मुण्ड विनाशिनी साक्षात् पार्वती देवी विराजमान थीं! पार्वतीने आते ही पद्माको ललकारकर कहा—"चामुण्डी! तूने देव-मर्य्यादाको तोड़, एक सत्य-धर्म-निष्ठ पुण्यात्माको, विपत्तिके पहाड़ोंसे पीसकर, पापको आश्रय दिया है; इसलिये आज स्वयं मैं तुझे उचित दण्ड प्रदानकर धर्मकी जय और पापका क्षय करूँगी। आ देखूँ, तुझमें कितना बल है।"

इतना कहकर चण्डी देवीने अपने सिंहको पद्मापर ललकारा, पद्मा भी युद्ध सज्जासे सजकर आयी थी, अतः वह भी खड्ग निकालकर पार्वतीकी ओर बढ़ी। दोनोंकी हुङ्कारोंसे आकाश और पाताल सभी भर गये। उपस्थित व्यक्तियोंकी आँखें, दोनों देवियोंके दिव्य अस्त्रोंके तेजसे चौंधिया गयीं। आकाशके देवता

पृथ्वीपर इन दो देवियोंके होनेवाले युद्धकी परिणाम कल्पनाकर थरथरा उठे। उन्होंने वहीं एक स्वरसे—करुण शब्दोंमें—भगवान् शिवका आह्वान और स्तवन किया। उस स्तवनको सुनकर अबतक तटस्थ रहनेवाले देवादिदेव महादेव, तत्काल धूलि-भस्म रञ्जित देहसे पार्वती और पद्माके मध्य-भागमें आ खड़े हुए। उन्होंने दोनों देवियोंकी ओर स्थिर दृष्टिसे देख, गम्भीर स्वरमें कहा—"पार्वती! शान्त! पद्मा! शान्त! परस्परमें वृथा युद्ध करनेसे सिवा हानिके लाभ तनिक भी न होगा। युद्धसे अकारण ही संसारका नाश होगा। मेरे नाम, भगवान् विष्णुके नामपर तुम लोग परस्पर गले मिलकर अब इस वृथाके विवादका अन्त करो।"

साक्षात् शिवको युद्ध शान्त करनेके लिये आया देख, पद्मा और पार्वती दोनोंने ही अपने अपने अस्त्रोंको कोषोंमें स्थान दिया। अपने आसनोंसे उतर दोनों ही नीचा मुँह किये एक ओर खड़ी हो रहीं।

शिवने थोड़े कड़े स्वरमें पद्माको संबोधनकर कहा—"पद्मे! तुम्हारा लड़कपन अभी नहीं गया! इतनी भीषण हिंसा! इतनी क्रूर प्रवृत्ति! देववाला होकर—पूजा पानेकी चेष्टामें—विना अत्याचारोंको अपनाये बाज न आयी। धिक्कार है, तुम्हें! तुमने मुझे अब सभामें जाने—सिर उठाकर दो बातें कहने—योग्य भी न रखा। पार्वतीने बहुत कुछ सहा। उनकी मैं इस क्षेत्रमें प्रशंसा करूँगा। किन्तु तुमने एक सच्ची सतीके सतीत्वको

खण्डितकर स्वर्ग और पृथ्वी सर्वत्र हाहाकारकी सृष्टि कर दी है। मैंने तुमसे आरम्भमें क्या कहा था? भूल गयी, कि चन्द्रधरके हाथोंसे ही संसारमें तुम्हारी पूजाका प्रचार होगा? मैनाकेहाथों-से—कुलटा नागिनीके हाथोंसे—परिवार समेत उसका नाशकर तुम क्या पाओगी? याद रखो, यदि संसारमें चन्द्रधर है, तो तुम्हारी पूजा भी है और चन्द्रधर नहीं, तो तुम्हारी पूजा भी नहीं।"

पद्माके प्रत्युत्तरकी तनिक भी अपेक्षा न कर भगवान् शिव-इस बार चन्द्रधरकी ओर मुड़े। उनके करुण दृष्टिसे देखते ही मृतप्राय, उठनेमें असमर्थ, चन्द्रधरके शरीरके सारे घाव न मालूम कहाँ विला गये। चन्द्रधर नया शरीर धारणकर पृथ्वीसे उठा और दौड़कर भगवान् शङ्करके चरणोंपर गिर पड़ा। शङ्कर उससे भी कुछ कड़े होकर बोले—"सौदागर! तुम वृथा ही पद्मा देवीके साथ द्वन्दकर क्यों अपने घरका उच्छेद किये डालते हो? क्या "न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ" केवल कहनेके लिये हैं? पद्मा देवीके साथ विवादकर क्या तुम सचमुच ही अपनी निर्विकल्प अवस्थाका परिचय देते हो? "मदोनैवमे नैव-मात्सर्य्य भावः" यह तुम किस लिये कहा करते हो? मैं इसका उत्तर चाहता हूं! यदि तुम कहो, कि सांसारिक सुख-दुख देनेवाले देवता पूजनीय नहीं, उच्च आदर्शके पुरुषोंको केवल उच्च देव-देवियोंकी ही पूजा करनी चाहिये, तो तुम्हारा ऐसा सम-झना अनुचित है; तुम संसारमें रहकर सुख और दुःखसे परे नहीं रह सकते। अब भी तुम्हारा मन लक्ष्मीन्द्र और विपुलाके लिये

व्याकुल हैं। ऐसी अवस्थामें तुम्हें सांसारिक सुख-दुःख देनेवाली देवीकी पूजा करनी ही होगी। और यदि कहो, कि मैं जनक ऋषिकी भाँति संसारमें रहकर सांसारिक विषयोंसे परे रहना चाहता हूँ, तो तुम जनक-ऋषिकी तरह भी नहीं हो सकते। तुममें जनक सा आत्मबल नहीं है। वे संसारमें रहकर भी आजन्म-मरण पर्य्यन्त सांसारिक सुख-दुःखोंसे विचलित नहीं हुए। जिस समय महर्षि शुकदेवने उनकी राजधानीको आगसे जलती देखकर कहा था, कि—"महाराज! आपकी राजधानी भस्मसात् हो रही है, आप यहाँ निश्चिन्त हुए कैसे बैठे हैं?" उस समय उन्होंने हँसकर कहा था, कि—"इस अग्निसे मेरा कुछ भी भस्म नहीं हो रहा है।" क्या तुमने भी जनक ऋषिकी भाँति अपनी विपत्तियोंको तुच्छ समझा है? मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, कि तुम सप्तताल पर्वतपर मुझसे तो "चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं" कह रहे थे, किन्तु हृदयमें विपुला और लक्ष्मीन्द्रके शोककी अग्नि प्रदीप्त हो रही थी। बीच बीचमें आँखोंसे आँसू गिरकर तुम्हारे हाथके बिल्वपत्र और धतूरेके फूलोंको कलङ्कित कर रहे थे। मैंने उस समय तुम्हारे वह उपहार बड़े कष्टसे ग्रहण किये थे। यद्यपि तुम अपनी उच्चता, अपना भावोद्रेक, विविध भाँतिके शब्दों द्वारा प्रकट कर रहे थे, किन्तु उन्हें स्वतः अनुभव नहीं कर पाते थे। उन्हें जो व्यक्ति अनुभूत करते हैं, उनके लिये त्याग स्वाभाविक है। वे सांसारिक दुःख शोक-तापोंसे तप्त नहीं होते। उन्हें ऐश्वर्य्योंकी राशियोंपर बैठे

रहनेपर भी, वे सब चिताभस्मसी प्रतीत होती हैं। सांसारिक सम्पत्तियाँ उन्हें किसी प्रकार भी आकर्षित नहीं कर सकतीं। तुम मुझे अपना इष्ट देवता समझकर पूजते हो तथापि मेरी सहायताके विना ही माया-पाशको छिन्न करनेकी चेष्टा करते हो। इससे वे छिन्न नहीं होते; वरन् उनकी शक्तियाँ दृढ़ता प्राप्त कर रही हैं। यदि तुम अहङ्कारी न होते, तो पद्मा लाख सिर पटककर भी तुम्हारा कुछ न विगाड़ सकती थी। तुम अभिमानी हो, ज्ञानवलसे मेरी मायाके तत्वको न समझकर, आत्म-बलसे उसे दूर करना चाहते हो, अतः स्पर्द्धित चेष्टा द्वारा स्वयं सांसारिक सुख-दुःख देनेवाले देवताको अपने पीछे खींचते हो। अब इन सब व्यर्थके वितण्डोंको त्यागो और माया स्वरूपिणी पुत्री मेरी पद्माको स्वीकार करो; तभी तुम संसारमें उदार शिवभक्त कहलाओगे। आशा है, पार्वती भी पद्माका सच्चा परिचय पाकर अब सन्तुष्ट हो जायेंगी और पद्माको अपनी ही विभूति समझकर गलेसे लगायेंगी। सौदागर! ऊपर आकाशकी ओर देखो,—देखो, वे कौन खड़े हुए तुम्हें मेरे उपदेशानुसार कार्य्य करनेका उपदेश दे रहे हैं।"

चन्द्रधरने बड़ी उत्सुकताके साथ दक्षिण दिशाकी ओर आकाशमें दृष्टि डाली। देखा—एक बड़े मधुर प्रकाशके बीचमें, दिव्य-स्वरूपमय विपुला और साक्षात् मदनवेशी लक्ष्मीन्द्र मृदु-मुस्कानके साथ चन्द्रधरको पद्माकी पूजा करनेका संकेत कर रहे हैं।

सतीत्वकी जय

२२

एक मासतक तीव्र तपस्या करनेके बाद, एक दिन विपुला, संध्यासिनी, नित्यमयी, रक्तकिनी नेत्री और मोहिनीके साथ, किसी अज्ञात शक्तिके प्रतापसे, स्वर्गकी देव-सभामें जा पहुँची। वहाँ सहस्र किरण सूर्यकी जैसी कान्ति वाले देवराज इन्द्र, एक उज्ज्वल मुकुटको धारण किये, ताजे पारिजात पुष्पोंको माला कण्ठमें पहने, उच्च सिंहासनपर विराजमान थे। उनके नेत्रोंका सारा तेज एकत्र होकर आश्चर्यके आवरणको धारण पूर्वक विपुलाके शरीरपर पड़ा। इन्द्रके सिंहासनसे कुछ ऊपर, लाल वस्त्र धारण किये, मणियोंका हार गलेमें डाले, लाल पटका बाँधे, रक्तवर्ण-देह वेद-वक्ता-ब्रह्मा, योगियोंकी भाँति सिंहासनपर विराजमान थे। उनके नेत्र भी कौतूहल परवश होकर विपुलाकी ओर आकर्षित हुए। उनसे कुछ और ऊपर, जिनके पास कैलासका रत्नमय मणि-प्रसाद, जिनकी प्रत्येक कोठरीमें विश्वम्भरका श्रेष्ठ रत्नभाण्डार भरा है, जिनके रक्षक यक्षराज कुबेर हैं, जिनकी अनुचरी स्वयं अन्नपूर्णा देवी, सोनेका कटोरा हाथमें लेकर संसारकी क्षुधा-निवृत्तिके

लिये अमृत-तुल्य खाद्य बांटा करती हैं—वे-इतने धन, इतनी दौलत और ऐसे सुन्दर मणिमय भवनोंके मालिक भगवान् शिव न मालूम क्यों नग्नवेशमें, कौपीन धारण किये—एकासनसे विराजमान हैं, उनके भी त्रिनेत्र विपुलाकी ओर गये। उनसे भी ऊपर कमल पुष्पोंकी माला धारण किये, लक्ष्मी सहित देवात्मा भगवान् विष्णु गरुड़ आसनपर विराजमान थे, उन्होंने भी विपुलाकी ओर अपनी दिव्य दृष्टिसे देखा।

विपुला भी इन सब देवताओंकी वेश-भूषा और दिव्य कान्तिको देख बड़ी विस्मित हुई। अनन्तर स्वच्छ चित्तसे उसने विविध स्तोत्रोंसे समस्त देवताओंकी स्तुतियाँ कीं। उन स्तुतियोंको सुनकर देवगण बोले—"सति-विपुले! हमलोग तुम्हारी पति-भक्ति और तपस्यासे सन्तुष्ट हैं, बोलो तुम क्या चाहती हो, हम तुम्हारा अभीष्ट साधन कर तुम्हें प्रसन्न करना चाहते हैं।"

विपुलाने आवेगसे रुँधे कण्ठसे कहा—"देवगण! जीवन-व्यापी विश्वासके अनुसार मैंने सती-धर्मको निभाया और सती-धर्मका पालन किया था एवं, जिस धर्मके प्रतापके आगे एक बार मृत्युपति धर्मराजको मेरीसी मानवी सावित्रीके आगे परास्त होना पड़ा था, मेरीसी क्षुद्रशक्ति रखनेवाली * मालावतीके आगे

*महिला मणिमालाका पाँचवाँ मणि "मालावती" ही होगा। यह पुस्तक भी ऐसी ही ओजस्विनी भाषामें, इससे भी अधिक सजधजके साथ प्रकाशित होगी।

घुटने टेककर क्षमा--प्रार्थना करती पड़ी थी, उसीको अवलम्ब समझकर मैंने विवाहके समय भरी सभामें पद्माकी आकाश-वाणीको मिथ्या करनेके लिये यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं अपने पतिको अकाल मृत्युसे बचाऊँगी। इतने पर भी एक कलुषित-हृदया, नीच-स्वभावा नाग-कन्याने मुझे वैधव्यके कठिन-पंकमें फंसा दिया—यही नहीं, मैं उसका पूर्ण रूपसे प्रतिविधान करके भी कुछ न कर सकी और वह आसानीसे अपनी प्रति-हिंसा वृत्तिको चरितार्थ कर, मुझे सौभाग्य रात्रिमें ही विधवा बना गयी। क्या यही पातिव्रतधर्म-पालनका पुरस्कार है? क्या यही सत्यपर—पुण्यपर-विश्वास लानेका उपहार है? क्या पाप और पुण्य अपने फलानुसार संसारके मानवोंपर ही लागू होते हैं, देवताओंपर क्या उनका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता? यदि ऐसा है, तब तो देवगण बड़े स्वार्थी, बड़े मतलबी और संसारकी आर्य्य जातिसे भी गये गुज़रे हैं। पुराण और शास्त्रोंकी व्यवस्थाएँ क्या केवल विश्वासके मूल्यमें ही बेची जाती हैं? क्या व्यवहारिक जगत्में --विशेषकर देवताओंके सामने—उनका तनिक भी महत्व नहीं? तप, दान, धर्म और सत्य-पराय-णताका पुरस्कार निरोग, निस्पृह, तृप्त, निर्भय और सर्व सुखी रहना है, किन्तु मेरे श्वसुर आदर्श शिव-भक्त, एकमात्र पार्वती-भक्त होकर भी, देवी पद्माके कोपानलमें पड़कर, एकदम सर्वस्व-हीन संन्यासी हो बैठे हैं। एक नहीं, उन्हें सात-सात पुत्रोंके अन्त्येष्टि संस्कार करके अपने हाथोंको कलुषित करना पड़ा है।

सात-सात नवयुवती वधुओंका वैधव्य-पाप उन्हींके सिरपर लदा हुआ है। इस प्रकार मेरे सारे पुण्यानुष्ठान व्यर्थ, मेरी माता मेरी सासके समस्त पुण्यानुष्ठान वृथा और मेरे श्वसुरके भी धर्म-कर्मों पर पानी फिर गया। जय मिली तो देवी पद्माको, इच्छा पूर्ण हुई तो मैना की। हाय! विवाहकी सौभाग्य-रात्रि, जब कि मेरे माथेपर सिन्दूर-विन्दु तक नहीं छूटा, उसी बीचमें पाप-प्रणयको चरितार्थ करनेवाली नागवाला मैना........।"

इसके आगे विपुलाके मुखसे एक शब्द भी न निकल सका, देवगण सतीके न्याय-संगत अभियोग और उसकी करुण-कथा को सुनकर स्थिर न रह सके। उनके नेत्रोंमें भी समवेदना और सहानुभूतिके आँसू भर आये। महादेव और पार्वती, विष्णु और लक्ष्मी; ब्रह्मा और ब्रह्माणी तथा इन्द्र और इन्द्राणी विपुलाको अश्वासन देते हुए बोले—"पुण्यशीले! तुमने अपने इस थोड़ेसे जीवनमें सत्य पातिव्रतधर्म पालन पूर्वक जितने कष्टोंसे युद्ध किया है, वे तुम्हारे लिये वास्तवमें अनुपयुक्त हैं। प्रसन्नताकी बात इतनी ही है, कि तुमने ये सारे कष्ट अपने पतिके जीवनके लिये ही सहन किये हैं, अपनी परीक्षाओंमें तुम पूर्ण रूपसे उत्तीर्ण हुई हो। वास्तवमें तुम जैसी सच्ची पतिव्रताको पातिव्रतका सच्चा पुरस्कार न मिलना और पुरस्कारके बदले, अनन्त कष्टोंका भोगना, हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। खैर, अब तुम अपने मनको शान्त करो—अब तुम्हारे अभीष्ट लाभ करनेमें तनिक भी विलम्ब न होगा।"

इतना कहनेके बाद देवगण चुप हो गये। इन्द्रने तत्काल पद्मा और मैनाके पिता श्रुतस्वानको बुलवाया। पद्मा और श्रुतस्वानके आ जानेपर इन्द्रने, पहले श्रुतस्वानपर क्रोधित हो, मैनाके सब कार्योंकी कथा सुना, उसपर अपराध प्रमाणित किया और आज्ञा दी, कि वह देवलोक और नागलोकसे निकाली जा कर मृत्युलोकमें जाये और वहाँ निःसहाय होकर वैधव्यके अनन्त कष्टोंको भोग करे। पद्माको आज्ञा हुई, कि वह तत्काल इसी देव सभामें लखीन्द्रको प्राण-दान करे।

इन्द्रकी आज्ञाको पद्मादेवीने शिरोधार्य्य किया। साथ ही उसने एक-एककर अपनी दुःख कथायें भी कहीं—चन्द्रधरकी रानी अलका छिपकर उसकी पूजा करती थी, चन्द्रधरने यह जानकर उसके निवासस्थल मङ्गलघटमें हरतालकी लाठी मारी और उसकी पूजा-सामग्रियाँ फिंकवाकर नवीन पार्वती-मन्दिर बनवाया। चम्पक नगरमें ढिंढोरा पिटवाकर प्रत्येक प्रजासे पद्माकी पूजा करनेका निषेध कर दिया। साथ ही कीट-पतङ्गसे भी क्षुद्र समझकर वह सदा पद्माका अपमान करता रहा। अब देवगण ही बतायें, कोई भी देवी-देवता मनुष्यकी इतनी घृणाको कबतक सहन कर सकेगा? यदि चन्द्रधरके न पूजनेसे संसारमें उसकी पूजाके प्रचारित होनेमें कोई अड़चन न पड़ती, तो पद्मा कभी उसके साथ प्रतिस्पर्द्धाका व्यवहार न करती; किन्तु पूज्यपाद पिता, भगवान महादेवका आदेश है, कि—बिना चन्द्रधरके पूजे संसारमें उसकी पूजा-प्रतिष्ठा न होगी। ऐसी

अवस्थामें वह किस तरह एक मनुष्यके सामने हार मानकर मस्तक झुकाती ?

यह सब कहकर पद्माने करुण-दृष्टिसे महादेवकी ओर देखा और चुपचाप अश्रु-विसर्जन करने लगी ।

महादेवने उसे आश्वासन दिया, कि चन्द्रधर अब उसकी अवश्य पूजा करेगा ।

महादेवकी आश्वासन वाणी सुनकर पद्माका मन प्रफुल्लित हो उठा । पद्माने प्रसन्न चित्तसे विपुलासे लक्ष्मीन्द्रके शवकी अस्थियोंको यथा-स्थान रखवाकर उसे सभास्थलमें पुनर्जीवन दान दिया । स्वर्गके वायुस्पर्शसे अपूर्व कान्ति प्राप्तकर, पुनर्जीवित लक्ष्मीन्द्र, विपुलाके पास आ खड़े हुए ।

देवताओंने कहा—"विपुले ! हम तुम्हारे सतीत्व-धर्म-पालनपर अत्यन्त सन्तुष्ट हैं; तुम और जो कुछ माँगना चाहो, वह भी माँग लो ।"

विपुलाने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभुओ ! जिस प्रकार आपने मेरे स्वामीको पुनर्जीवितकर मुझे सौभाग्यशालिनी बनाया है, उसी प्रकार मेरे छहों जेठोंको जिलाकर मेरी जिठानियोंको भी सौभाग्यशालिनी बनाइये !"

देवताओंने कहा—"तथास्तु ।"

सबके देखते-देखते श्रीधर, श्रीकर, गुणधर, मणिधर सृष्टिधर और दुर्गाधर—चन्द्रधरके ये छहों पुत्र भी देवकान्ति धारण कर लक्ष्मीन्द्रके समीप आ खड़े हुए ।

पद्माकी प्रसन्नतासे कालीदहमें डूबी हुई मधुकर आदि चौदह नौकाएं भी पूर्ववत् धन-रत्नसे पूर्ण होकर मन्दाकिनीके तटपर छाती फुलाकर आ खड़ी हुईं।

विपुलाने अब फिर प्रसन्न मनसे गायन और नृत्यके साथ समस्त देवताओंकी स्तुति की, एवं सबका आशीर्वाद ग्रहणकर पति और जेठोंके साथ वह नित्यमयी, नेत्री और मोहिनीके पास आयी। सबने इन तीनो देवियोंके चरणोंमें भी प्रणाम किया। नित्यमयी, नेत्री और मोहिनीने स्नेहसे सबके सिरपर हाथ फेरकर विपुलाको मर्त्यधाम जानेकी आज्ञा दी।

विपुला प्रसन्न मनसे देव-सभासे विदा हो, अपने परिवारके साथ मन्दाकिनीमें खड़ी मधुकर नौकामें आ बैठी।

नौकाएं उस स्वर्ग-गङ्गाके पथसे चम्पक नगरकी ओर रवाना हुईं।



प्रीति-सम्मिलन

२३



महाराज चन्द्रधर भगवान् शिवका आदेश ग्रहण कर घर गये! घर जाकर उन्होंने पत्नीसे कहा, कि विपुलाको गये आज पूरे छै मास बीत गये। चलो, आज परिवार समेत भगवती पार्वती, देवी पद्मा और भगवान् शिवकी पूजा-सामग्रीके साथ, सप्तताल पर्वतपर अवस्थित लौह-गृहको देख आवें। आज उसका दरवाजा खुल गया होगा। मङ्गल दीपक बुझ गया होगा। अन्न बिगड़ गया होगा। सतीकी प्रतिज्ञा थी, कि वह ठीक छै मास बाद, पति लक्ष्मीन्द्रको जीवित कराकर लौटेगी। देखें, आज वह सौभाग्य हमें प्राप्त होता है या नहीं।

आज्ञा पाते ही रानी अलकाने धड़कती छाती, काँपते हाथों और बहुओंकी सहायतासे पर्वत-यात्राका सामान एकत्रित किया। स्नानादि कर सुन्दर वस्त्र धारण किये एवं सब तरहसे दुरुस्त होकर वह रथमें जा बैठी। महाराज चन्द्रधर भी उसीके पास बैठे। बहुएँ पालकियोंमें सवार हुईं।



२३


महाराज चन्द्रधर भगवान् शिवका आदेश ग्रहण कर घर गये! घर जाकर उन्होंने पत्नीसे कहा, कि विपुलाको गये आज पूरे छै मास वीत गये। चलो, आज परिवार समेत भगवती पार्वती, देवी पद्मा और भगवान् शिवकी पूजा-सामग्रीके साथ, सप्तताल पर्वतपर अवस्थित लौह-गृहको देख आवें। आज उसका दरवाजा खुल गया होगा। मङ्गल दीपक बुझ गया होगा। अन्न बिगड़ गया होगा। सतीकी प्रतिज्ञायी, कि वह ठीक छै मास बाद, पति लक्ष्मीन्द्रको जीवित कराकर लौटेगी। देखें, आज वह सौभाग्य हमें प्राप्त होता है या नहीं।

आज्ञा पाते ही रानी अलकाने धड़कती छाती, काँपते हाथों और बहुओंकी सहायतासे पर्वत-यात्राका सामान एकत्रित किया। स्नानादि कर सुन्दर वस्त्र धारण किये एवं सब तरहसे दुरुस्त होकर वह रथमें जा बैठी। महाराज चन्द्रधर भी उसीके पास बैठे। बहुएँ पालकियोंमें सवार हुई।

हमारी देवरानी देवी विपुलामें भी वही तेज था—मानों दूसरी सावित्री थी—कौन ठिकाना, कि वे अपने पति ही नहीं, वरन् राज्य-लक्ष्मीके साथ हमारे पतियोंको भी साथ लेकर—आज न सही, चार दिन बाद लौट आयें।"

छोटी बहूकी इस बातपर पाँचों बहुएँ हँस पड़ीं। बोली-"बहन! तुम क्या सावित्रीसे कम थीं? तुमने अपने पतिको यम राजसे क्यों न छीन लिया?"

छोटी बहू—"यदि मुझमें इतना साहस होता—यदि मेरे पुण्य उतने जबर्दस्त होते, कि जितने सावित्रीके थे, तो मैं भी अपने पतिको जिला सकती। पर हम तो परस्परकी ईर्षा द्वेषमें अपने सारे पुण्योंको स्वाहा कर रही हैं।"

बड़ी बहुएँ छोटी बहूकी इस बातका उत्तर देना ही चाहती थीं, कि इसी समय यशोधर ग्रामसे अपने सातों पुत्र और पत्नी अरुन्धतीके साथ सम्बन्धी राधामोहन वहाँ आ पहुँचे।

उन्होंने आते ही बड़ी उत्सुकताके साथ महाराज चन्द्रधरसे विपुलाके लौटनेका संवाद पूछा, पर चन्द्रधरके उदास पूर्ण स्वरसे कहे "अभी कुछ नहीं" वाक्यने उनकी कमर तोड़ दी। वे माथेपर हाथ रखकर एक चट्टानपर बैठ रहे।

सबको बैठे-बैठे दोपहरसे तीसरा प्रहर बीत गया, पर लौह-गृहके कपाट न खुले।

सूर्यास्त होते देख सबको निराशा हो गई। अब वे लोग जीवनसे हताश हुए व्यक्तिकी भाँति हतोत्साह होकर चम्पक

नगर जानेकी तैयारी करने लगे थे, कि सहसा लौह-गृहमें धड़ाकेका एक शब्द हुआ, साथ ही उसके किवाड़ भी खुल गये।

चन्द्रधरने हर्षोत्फुल्ल होकर गगन-भेदी नादमें कहा—"जय शिव शङ्कर!"

चन्द्रधरके साथ ही साथ अन्यान्य उपस्थित व्यक्ति भी बोल उठे—"जय शिव शङ्कर!"

अनन्तर सब लोग स्नेह और प्रेमके आवेगसे काँपते हुए पैरोंसे, आगे बढ़कर लौह-गृहमें घुस गये। भीतर जाकर देखा, दीपक बुझ गया है और रसोई घरमें रखे अन्नमें कीड़े बिलबिला रहे हैं।

चन्द्रधरने तत्काल अपने सेवकोंको आज्ञा दी, कि वे अति शीघ्र मकानको साफकर धो डालें। यहाँ पार्वती और पद्माका पूजन होगा। बातकी बातमें सब लोग मकानकी सफ़ाई करने में लिपट पड़े। सारा मकान धुलकर स्वच्छ हो गया। चन्द्रधर सपरिवार सप्तताल पर्वतके नीचे बहनेवाली गुञ्जरीमें स्नान करने गये। महा मोदके साथ मंगल स्नान हुआ। सन्ध्या वंदनादिके बाद, सब लोग फिर लौह-गृहमें आये और वेदवल्लभ पुरोहितकी अध्यक्षतामें पार्वती-पद्माका बड़े समारोहसे पूजन हुआ।

जिस समय घण्टे घड़ियालोंकी ध्वनि और लोगोंके जय जयनादके साथ पद्माकी आरती हो रही थी, उस समय आकाशसे दिव्य ज्योतिके बीचमें, कमल दल शोभित अतीव सुन्दर सर्प-

सिंहासन उतरा और उसपर देवी पद्मा दोनों घुटनोंपर दिव्य-वेशी विपुला और लक्ष्मीन्द्रको बैठाये उतरतीं दीख पड़ीं। साथ ही उसी समय बाहरके द्वारसे चन्द्रधरके पूर्व मृत छहों पुत्र अपनी देहसे दिव्य कान्ति बखेरते 'सतीकी जय' 'पद्माकी जय' करते करते घरमें घुसे।

उस समयके आनन्द, उस समयकी प्रसन्नता और उस समयके उछाहका—लेखकके शब्दोंमें शक्ति नहीं जो वर्णन कर सके। हमारे पाठकोंमें, जिस किसीको कभी अपने प्रिय बन्धुके चिर-वियोगके बाद प्रेम-सम्मिलनका सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, वे उस समयके आनन्दका थोड़ा बहुत अनुभव कर सकते हैं।



उपसंहार



प्रजा-पूजा और प्रीति-सम्मिलन हो जानेपर सब लोगोंको स्वर्गकी सी शान्ति प्राप्त हुई। विपुलाके पिता सेठ राधामोहन और महाराज चन्द्रधरने अगले दिन अपनी अपनी राजधानियोंमें विविध दान-पुण्य होनेकी व्यवस्था की। महाराज चन्द्रधरने जननाल पर्वतपर बने उस लौहगृहको पद्मा-मन्दिरका स्वरूप दे दिया। श्रावणकृष्ण पञ्चमीके प्रातः कालको शुभ मुहूर्त्तमें उसमें पद्मा-देवीकी मूर्त्ति-स्थापना की गयी। पुरोहित वेदवल्लभ शर्माने मन्त्रोच्चारण पूर्वक उसमें प्राण-प्रतिष्ठा की। जो चन्द्रधर पहले पद्माका नाम सुनकरही घृणासे नाक सिकोड़ लेते थे, वे ही आज भक्ति गद्‌गद्‌ कण्ठसे—

"देवी मन्दारमन्दां नगधर वदनां चारु कान्तिं वदान्याम्।
हंसारूढ़ाम्बुदारं मरकत-वरणां सर्वदा सर्वदेयम्॥
स्मेरास्या भक्तिभाजी वनरुह मुनिगणानाम् स्तवं स्तोत्रके—
धरेदं माह नागा रुरुच युगलं भोगिनी काम रूपाम्॥"

आदि श्लोकों द्वारा उनकी सैकड़ों बार वन्दना करने लगे। इस वन्दनासे प्रसन्न होकर पद्मादेवीने राजाको सब सुख दान पूर्वक उनके मित्र शङ्कर नायकको भी जिला दिया।

इस प्रकार कई दिन तक निरन्तर पद्मा-पूजाका उत्सव मनाया जाता रहा। इस समारोहके शान्त होनेपर महाराज चन्द्रधरने उसी लौह-गृहके समीप स्फटिकके बड़े बड़े स्तम्भोंके ऊपर मोर पङ्खी पत्थरोंसे अच्छादित एक अट्टालिका बनवायी। उसकी छतकी झालरें हीरा-मणि और मोतियोंसे गुथी जाकर स्वर्ण-प्रदीप-मालाकी ज्योतिसे उद्भासित हो उठीं। इस स्थानका नामकरण हुआ "सती-मन्दिर।" यह पतिव्रता विपुलाकी कीर्त्ति-स्मृतिको चिरस्थायी रखनेके लिये बनाया गया था। उसमें प्रधानतया विपुला, और साथ ही साथ लक्ष्मीन्द्र, चन्द्रधर तथा अलकाकी प्रस्तर मूर्त्तियाँ स्थापित हुई थीं। श्रावण कृष्ण पञ्चमीको जब नगरके लोग पद्मा-पूजन करनेके लिये जाते, तब वे सती-मन्दिरमें एकत्रित हो विपुलाके पादमूलमें बैठकर उसका सतीत्व-गान गाया करते थे। अस्तु।

कुछ दिनों राज-सुख भोगकर महाराज चन्द्रधर, अपनी वृद्धावस्था आयी देख, पुत्र लक्ष्मीन्द्रको राज्य-भार सौंपकर, भगवानका भजन करनेके लिये वनमें कुटी बनवाकर उसमें रानी समेत रहने लगे।

सबसे छोटी होनेपर भी रानी विपुलाका उनकी सब जेठानियाँ आदर किया करती थीं। स्वर्गकी देवीकी भाँति हरदम उसके आज्ञा-पालनका अवसर ढूंढ़ती रहती थीं।

महाराज लक्ष्मीन्द्रका राज्य-शासन आदर्श था। क्षत्रिय राजाओंके सुशासनसे टक्कर लेता था। उनके दान-पुण्य और विद्या-बुद्धिकी सर्वत्र प्रशंसा होती थी।

पद्माके प्रतापसे विपुलाके एक अत्यन्त सुन्दर सन्तान हुई। इस सन्तानका नाम हुआ पद्मा-प्रसाद। पद्मा-प्रसादको पाकर युगल दम्पतियोंके आनन्दका ठिकाना न रहा। उस समय उन्हें वैसा ही आनन्द हुआ, जिस प्रकार जयन्तको पाकर इन्द्र और इन्द्राणीको।

लक्ष्मीन्द्र शिव, पार्वती और पद्माके परम भक्त थे। अतएव इनके परिवारपर तीनों देवताओंकी विशेष कृपा रहती थी। इस कृपासे वे दिन दिन वैभव-सम्पन्न और धन कुवेर बनते जाते थे। उन्हें अपने जीवनमें फिर एक दिनके लिये भी दुःख और आपत्तियोंका सामना नहीं करना पड़ा और यद्यपि सुख दुःख चक्रकी भाँति घूमते रहते हैं, परन्तु विपुला और लक्ष्मीन्द्रके लिये सांसारिक सुख मानों सदा सर्वदाके लिये सुस्थिर थे। जैसा सुखमय जीवन उनका बीता, वैसे जीवनके लिये देवगण भी तरसते हैं। सच है, जो लोग सत्य धर्मको अपना जीवनादर्श बनाते हैं, उनके लिये संसारमें दुःख है ही नहीं। उनके प्रतापसे वे ही नहीं वरन् उनकी समीपवर्त्तिनी आत्माएं भी उच्च भावोंसे विभूषित होकर सदा सुखी रहती हैं।

* * * * *

प्रिय पाठकगण! पतिव्रता शिरोमणि सती विपुलाकी पुण्यमयी कथा समाप्त हो गयी। इस कथाको सुनकर जिस प्रकार श्रोताओंका मनोरञ्जन हुआ, उसी प्रकार हमने भी अपनी लेखनीको परम धन्य माना है। आइये, इस समय तो—

सती विपुलाकी जय

का नाद करते हुए, परस्पर गले मिलकर विदा हों और अन्तमें शीघ्र ही मिलनेकी आशाको अपने-अपने हृदयमें [illegible] करते जायें।

